पुतले
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

तेलगु उपन्यास

नियति के पुतले

मार्मिक तथा शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास
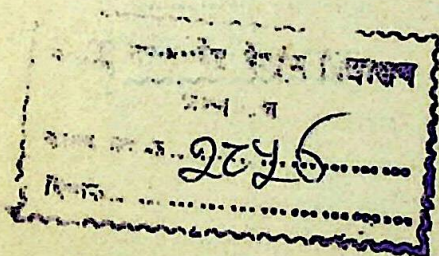
मूल
पिनिशेट्टि श्रीराममूर्त्ति

रूपान्तर
बालशौरि रेड्डी

१९७२

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

•

पहली बार : १९७२

मूल्य
[illegible]
संशोधित मूल्य.... ८)

•

मुद्रक
सा० प्रि० द्वारा
इंडिया प्रिंटर्स
दिल्ली

७९५

प्रकाशकीय

'मंडल' ने अबतक अनेक उपन्यास प्रकाशित किये हैं। उनके पीछे एक दृष्टि रही है। भावनात्मक एकता के विचार से आवश्यक है कि हिन्दी के पाठक अन्य भारतीय भाषाओं के उत्तम साहित्य से परिचित हों। अतः हिन्दी के एक मौलिक उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात 'मण्डल' ने भारत की अन्य भाषाओं में से कुछ उत्कृष्ट उपन्यासों को चुना और उनका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। अबतक इस माला में बंगला, मराठी, तमिल, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं के उपन्यास निकल चुके हैं।

उसी श्रृंखला में तेलगु साहित्य की यह कृति पाठकों को सुलभ की जा रही है। इसके लेखक श्री पिंनिशेट्टि श्रीराममूर्त्ति आधुनिक तेलगु साहित्य के कथाकारों एवं नाटककारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी रचनाओं में मुख्य ध्येय सामाजिक कुरीतियों के प्रति लोक-चेतना जाग्रत करना है। उनके कई नाटक सफलतापूर्वक मंच पर खेले जा चुके हैं और प्रेक्षकों द्वारा प्रशंसित तथा पुरस्कृत हुए हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'दत्तता' के नाम से तेलगु में प्रकाशित हुआ है। इसमें दो भाइयों की विपरीत मानसिक स्थिति, मां के वात्सल्य तथा सामाजिक वैषम्य से पीड़ित परिवारों के सघर्ष की मार्मिक कहानी है।

हर्ष की बात है कि इसका हिन्दी-रूपान्तर हिन्दी के जाने-माने लेखक श्री बालशौरि रेड्डी ने किया है।

हमें पूरा विश्वास है कि इस कृति का सभी क्षेत्रों में स्वागत होगा। यद्यपि आज स्थिति बदल गई है, तथापि वैभव तथा अभाव के बीच की खाई आज भी बनी हुई है। उसे पाटना आवश्यक है और इस दिशा में यह उपन्यास अपना विशेष महत्व रखता है।

—मंत्री

नियति
के
पुतले

१ ||

एक समय था, जब वैद्य रामय्या चौधरी की प्रतिभा कृष्णा जिले में चमकती थी। धीरे-धीरे उसकी प्रतिभा घटती गई। इसके कई कारण हो सकते हैं। चौधरी के रोग-निदान की त्रुटि कहिए, आयुर्वेद की उपेक्षा और एलोपैथी का आदर कहिए, पर रामय्या चौधरी की आमदनी घटती ही गई। साथ ही पचास साल की उम्र में रामय्या चौधरी ने अपना भौतिक शरीर भी त्याग दिया।

छोटे भाई चन्द्रय्या अपने बड़े भाई रामय्या की मृत्यु से जरूर दुःखी हुआ, लेकिन इस बात का उसे संतोष भी था कि वह और कई साल तक जीवित रहकर कर्ज का भार बढ़ाने से पहले चला गया।

रामय्या चौधरी की पत्नी के पास अपने पति की मृत्यु के समय जायदाद के नाम पर कोई वस्तु या वाहन न था, पर राम और रवि नामक अपने दो पुत्रों को उसने बड़ी संपत्ति माना।

अपने पिता की मृत्यु के समय राम चार साल का था और रवि दो साल का।

शांतम्मा की देवरानी सुभद्रा को इस बात का दुःख था कि उसका पति दलाली करके जो थोड़ा-बहुत कमाता है, उससे इस बड़े परिवार को चलाना मुश्किल है। लेकिन चन्द्रय्या का वह खुलकर विरोध नहीं कर पाती थी, इसलिए मन मसोसकर दिन काटती थी।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपनी व्यथा और प्रसन्नता को बहुत समय तक छिपा नहीं पाते। चाहे वे गुप्त रखनेवाले स्वभाव के ही क्यों न हों, व्यथा को पहचानने की क्षमता रखनेवालों के सामने किसी-न-किसी रूप में वह प्रकट हो ही जाती है।

चौधरी के परिवार में ठीक यही बात हुई। पति की मृत्यु के बाद

छः महीने तक शांतम्मा ने अपने दिन आराम से विताये, मगर देवरानी के व्यवहार से उसने निश्चय कर लिया कि अब वह उस घर में ज्यादा दिन नहीं रह सकेगी।

एक दिन ऋणदाता बंगारय्या ने चन्द्रय्या से रुपये लौटा ने का तकाज़ा किया और भला-बुरा कहकर चला गया। इसपर सुभद्रा खीज उठी और अपने स्वर्गवासी जेठ को लक्ष्य कर बोली, "मरकर भी हमको अपमानित करा रहे हैं।"

पिछवाड़े बैठी अपने बच्चों को खाना खिलाती शांतम्मा के कानों में यह बात पड़ी। वह जानती है कि उसके पति ने कभी अपने भाई को कोई कष्ट नहीं पहुंचाया, लेकिन देवरानी की इन बेतुकी बातों पर अधिक विचार करने का उसने कष्ट नहीं उठाया।

सुभद्रा इतने से मौन रह जाती तो शायद शांतम्मा इन बातों को भुला देती, परन्तु सुभद्रा के कठोर वचन फिर सुनाई दिये, "हम लोग खाने को तरस रहे हैं, और इधर तुम हो कि तीन-तीन व्यक्तियों का बोझ भी हमारे सिर मढ़कर चले गये हो!"

रामय्या चौधरी के जीवन-काल में देवरानी सदा उनको 'आप' कहकर संबोधित करती रही, उनका आदर भी करती रही, किन्तु आंखों से ओझल होते ही वह यह कैसे-कैसे आरोप उनपर लगा रही है, और दिल को चुभनेवाली कैसी-कैसी बातें कह रही है!

रामय्या चौधरी को मृत्यु के पहले यह मालूम होता कि उसके परिवार पर उसके अनन्तर ऐसे आरोप लगाये जायंगे तो पत्नी और बच्चों के लिए वह कोई-न-कोई प्रबंध कर जाता, लेकिन अपने जीवन-काल में उसके मन में कभी यह विचार नहीं उठा कि छोटे भाई का परिवार अलग है और उसका उससे भिन्न है। शांतम्मा यही बात सोच रही थी।

बच्चे के मुंह में कौर देती मां की गीली आंखों को देखकर रवि बोल पड़ा, "मां!"

बच्चे की पुकार सुनकर शांतम्मा स्वस्थ हुई और उसने रवि के मुंह में कौर रखा।

पास में ही बैठे स्वयं खाना खाते राम ने मां की ओर आश्चर्य से देखते हुए पूछा, "मां, रोती क्यों हो ?"

आंचल से आंसू पोंछती हुई खाली थालियों को लेकर शांतम्मा उठ खड़ी होगई।

बिना डांटे-डपटे या पीटे अप्रिय व्यक्तियों को घर से बड़ी सरलता के साथ भगाने की विद्या पुरुषों की अपेक्षा नारियां अधिक अच्छी तरह जानती हैं।

चन्द्रय्या चौपाल में डेस्क के सहारे बैठा हिसाब-किताब कर रहा था। तभी छोटे बच्चे को गोद में लिये, कपड़ों की गठरी थामे, राम के साथ आकर खड़ी हुई अपनी भाभी को देखकर वह चकित हो गया ! उसने पूछा, "क्यों, भाभीजी, क्या बात है ?"

शांतम्मा मौन रही। उसके मुंह से बोल नहीं निकला।

"कहां की यात्रा पर जा रही हैं ?" चंद्रय्या के स्वर में आतुरता ध्वनित हुई।

"कहीं भी जाऊंगी।" उसके रुद्ध कंठ में व्याकुलता थी।

चन्द्रय्या आश्चर्य के साथ उठकर खड़ा हो गया।

"क्यों, किसीने कुछ कहा ?"

शांतम्मा रूखी हँसी हँस दी। बोली, "कुछ कहनेवाले तो अब रहे नहीं।" इन शब्दों को कहते शांतम्मा की आंखों में आंसू छलछला आये, लेकिन अपनेको संभालते हुए फिर बोली, "एक की मेहनत की कमाई सब बैठे खाते रहें, तो कितना बड़ा अन्याय होगा ?"

शांतम्मा की दृष्टि में प्रश्नचिह्न लगा था।

चन्द्रय्या सोचने लगा, आजतक उसके मन में यह सवाल नहीं उठा, भाभी के मन में उठा है, तो इसका क्या कारण होगा ? वह बोला, "अभी आता हूं, भाभीजी।"

शांतम्मा ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसे देखा। उसने चन्द्रय्या को वापस बुलाना चाहा, लेकिन फिर सोचने लगी, उसके भीतर जाने से कोई हानि होनेवाली नहीं।

चन्द्रय्या सीधे घर के भीतर पहुंचा। निश्चित होकर माथे पर

कुंकुम की बिंदी लगाये सुभद्रा ने अपने पति के पैरों की आहट सुनी, तो घूमकर देखा।

"तुमने भाभी को कुछ बुरा-भला तो नहीं कहा ?"

यह सवाल सुनते ही सुभद्रा स्तंभित हो गई। उसने संभलकर पूछा, "क्यों, उन्होंने आपसे कुछ कहा है ?"

"नहीं।"

"तो फिर ?" सुभद्रा ने प्रश्नभरी दृष्टि दौड़ाई। चन्द्रय्या तुरंत जवाब न दे सका। लेकिन धीरे-से बोला, "बिना कारण के भाभीजी घर से क्यों निकलेंगी ?"

"इसका जवाब मैं क्या दे सकती हूं!"

सुभद्रा मुंह बनाकर रसोईघर की ओर चली गई।

चन्द्रय्या की समझ में कुछ न आया। सोचते-विचारते वह ओसारे की ओर चला।

"सुनो!"

चन्द्रय्या ने घूमकर देखा। सुभद्रा रसोईघर के द्वार पर खड़ी बुला रही थी। वह कह रही थी, "भाभीजी पर आपकी इतनी दया है तो उनको मत जाने दीजिए। लेकिन यह बात सच है कि इस फिजूल खर्च को देखते मैं ज्यादा दिन इस घर में नहीं रह सकती। मेरी ही बात क्या, जब बंधकवालों के हिसाब में यह घर निकल जायगा, तब आपकी भी यही हालत होगी और गांव-गांव की धूल छानते फिरेंगे!..."

"यह तुम क्या कहती हो ?" चन्द्रय्या ने कठोर स्वर में कहा।

"मेरी बात का मतलब जानते तो हमारी गृहस्थी कभी की सुधर जाती।"

और वह मारे क्रोध के हाथ हिलाते, विरक्ति का भाव प्रकट करते, रसोईघर के अन्दर चली गई।

चन्द्रय्या स्तब्ध खड़ा रहा।

पत्नी की बातों से उसे क्रोध तो आया, किन्तु उसकी बातों में न केवल स्त्री का स्वार्थ छिपा था, बल्कि पति के स्वार्थ का भी दृष्टिकोण निहित था। परन्तु पूज्य भाई का स्मरण आते ही, उसका निच्छल हृदय दुःख से कांप उठा। उसने सोचा कि भाभीजी को रोक लेने से

कोई लाभ न होगा। उनकी इच्छा का विरोध करना उचित न समझ वह सीधे अपने कमरे के अन्दर चला गया।

आंगन में बड़ी देर तक शांतम्मा देवर का इंतजार करती रही, पर वह न लौटा तो वह समझ गई कि वह उसे मुंह दिखाने में झिझक रहा है। वह धीरे-धीरे आंगन पार करने लगी।

"भाभीजी !"

देवर की आवाज सुनकर शांतम्मा खड़ी हो गई।

"भीतर आइए, भाभीजी।"

चन्द्रय्या ने आकर राम को गोद में ले लिया।

"यह तुम क्या करते हो, चन्द्रय्या ?" शांतम्मा ने आतुर स्वर में पूछा।

"मैं कुछ करनेवाला होता तो क्या आपको इस घर से जाने देता ? मैंने तो यही सोचा था कि मेरे भाई के बच्चे मेरे ही बच्चे हैं।"

चन्द्रय्या का कंठ भर आया। उसकी आंखें सजल हो गईं। शांतम्मा घर के अन्दर आ गई।

बैठक में राम को उतारकर चन्द्रय्या बोला, "जरूर जाइए, भाभीजी। मैंने तांगा लाने के लिए आदमी भेजा है। लेकिन मेरी यही प्रार्थना है कि आपके मन में मेरे प्रति कोई क्रोध हो तो मुंह पर गालियां देकर जाइए, परन्तु दूसरों के सामने मुझे अपराधी के रूप में खड़ा न कर दीजिए।"

चन्द्रय्या की बातें सुनकर शांतम्मा चकित रह गई। उसने गहरी सांस ली और बोली, "चन्द्रय्या, इसमें अपराधी कोई नहीं है। अकारण मैं किसी को दोष नहीं देती। कभी कोई तकलीफ आयेगी तो मैं अपने भाग्य पर ही रोऊंगी !"

तांगा घर के सामने आ खड़ा हुआ। शांतम्मा ने आंचल से आंसू पोंछ डाले।

"ये लीजिये, भाभीजी !"

सजल नेत्रों से शांतम्मा ने आश्चर्य के साथ देखा। दस-दस रुपयों के नोट चन्द्रय्या के हाथ में फड़फड़ा रहे थे।

"एकसौ पचास रुपये, भाभीजी ! बस, पेटी में इतने ही हैं। इससे ज्यादा न दे सका, इस बात का मुझे बड़ा दुःख है। लीजिए !" चन्द्रय्या के आवेगभरे वचनों से शांतम्मा ने उसकी व्यथा को भांप लिया। उसने चुपचाप रुपये ले लिये।

राम को उठाकर चन्द्रय्या ने तांगे में बिठाया। धीरे-से शांतम्मा और रवि भी उसपर जा बैठे।

तांगा चल पड़ा। चन्द्रय्या वहीं खड़ा तबतक देखता रहा, जबतक कि तांगा आंखों से ओझल न हो गया। फिर आंसू पोंछकर घर के भीतर चला आया। बड़ी तृप्ति के साथ मुस्कराती अपनी पत्नी के चेहरे में उसने भयंकर रूप देखा।

२ ||

तेनाली स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही शांतम्मा रेल से उतरी। राम की उंगली पकड़े और रवि को बगल में दबाये वह स्टेशन के बाहर आई। यह उसका मायका था, इसलिए बचपन की सारी स्मृतियां उसके मानस-पटल पर प्रतिबिंबित होने लगीं। मायके को छोड़े दस साल हो गये, इस बीच वहां बहुत-कुछ बदल गया था।

शांतम्मा की मां उसके बचपन में ही मर गई थी। उसका पिता बेटी की शादी होने के दो साल बाद स्वर्गवासी हो गया था। आर्थिक कठिनाइयों से तंग आकर उसका भाई घर छोड़कर भाग गया था। तब से उसका पता ही नहीं चला। उस शहर में बच रही उसकी फूफी वेंकम्मा। वह बड़ी-बूढ़ी थी, मगर दयालु थी। शांतम्मा ने उसीके घर जाने का निश्चय किया। तांगे पर सवार हुई।

"कहां जाओगी, बेटी !" तांगेवाले ने पूछा।

"मारीसपेट—वेंकम्मा के घर !" शांतम्मा ने जवाब दिया।

"अच्छा !" तांगेवाले ने घोड़े की पीठ पर चाबुक मारी। थोड़ी

दूर चलने के बाद तांगेवाले ने कहा, "बेचारी ने होटल बंद कर रखा है, बेटी !"

शांतम्मा के अचरज की सीमा न रही ।

वेंकम्मा होटल चलाते तेनाली में मशहूर हो गई थी । उसके होटल में बढ़िया भोजन मिलता था । इसलिए सब कोई वहां खाने आते थे । तेनाली का बच्चा-बच्चा वेंकम्मा के होटल से परिचित था।

शांतम्मा ने कारण जानने की जिज्ञासा से पूछा, "क्यों भैया, होटल क्यों बन्द हो गया ?"

"दमे की बीमारी हो गई । बूढ़ी भी तो है !"

इस बीच तांगेवाला बीच रास्ते पर लेटे कुत्ते से बचने की कोशिश में लगा । शांतम्मा ने गहरी सांस ली । उसे डर होने लगा कि जिस आशा को लेकर वह इस शहर में पहुंची, वह भी जाती रही । उसके दिल में फूफी की कमाई पर जीने की इच्छा कभी न थी । वह तो यह सोचकर यहां आई थी कि वेंकम्मा के काम में हाथ बंटाने से उसके दिन भी गुजर जायंगे ! इसी आशा से उसने अपने बच्चों के साथ ससुराल छोड़ने का साहस किया था ।

एक खपरैल के मकान के सामने तांगा आकर रुक गया । शांतम्मा अपने बच्चों के साथ उतर पड़ी ।

"कितने पैसे, भैया !"

"अठन्नी, माई !"

तांगेवाले के हाथ में अठन्नी देकर शांतम्मा ने बच्चों के साथ दालान में पैर रखा । पिछवाड़े से बाल्टी भरकर पानी लानेवाली छोटी लड़की अचरज के साथ शांतम्मा को देखती रह गई । फिर पूछा, "आप लोग कौन हैं ?"

"वेंकम्माजी कहां है ?" शांतम्मा ने पूछा ।

"उस कमरे में हैं ।" लड़की ने एक कमरे की ओर इशारा किया ।

शांतम्मा उस कमरे में चली गई । खाट पर बैठी माला फेरती वेंकम्मा ने अर्ध-निमीलित नेत्रों से शांतम्मा को देखा । उसने माला एक

ओर को रख दी। कम दिखाई देने के कारण वह शांतम्मा को पहचान न पाई। धीरे-से उठकर वह शांतम्मा के निकट पहुंची।

"फूफी !" शांतम्मा के स्वर में दुःख उमड़ रहा था।

"आं !" कहते वेंकम्मा ने शांतम्मा को ध्यान से देखा। उसकी आवाज से पहचान लिया। हठात् उसे आलिंगन में लेकर रुआंसे स्वर में बोली, "बेटी ! भाग्य ने तेरे साथ भी दगा किया ? आ बेटी, आ बैठ ! बहुत दिन बाद तुझे देख रही हूं। जब-तब तेरे घर आना चाहा, लेकिन यह कमबख्त बीमारी मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। क्या करूं ?"

कहते-कहते उसका गला भर आया। थकावट से खांसते हुए उसने भीतर की ओर झांककर देखा और पुकारा, "तुलसी ! अरी, कहां मर गई ?" फिर शांतम्मा की ओर देखते हुए बोली, "मैं भी अनाथ हो गई हूं, बेटी ! नौकरानियों के बल पर दिन काटती हूं। तू खड़ी क्यों है ! बैठ जा।"

वेंकम्मा खाट पर बैठ गई और सामनेवाली चारपाई पर शांतम्मा को बैठने का इशारा किया। शांतम्मा के बैठने के बाद बोली, "अरी, तूने अपने बच्चों को नहीं दिखाया ?"

दो सुन्दर बच्चों को देखकर वेंकम्मा का दिल गद्‌गद् हो गया। उसने उन बच्चों को गोद में लेने के ख्याल से हाथ बढ़ाये।

वेंकम्मा का बुढ़ापा, बातें और उसका व्यवहार देखकर बच्चे घबरा-से गये। इसलिए दोनों वेंकम्मा के पास नहीं गये, बल्कि सहमी हुई आंखों से वेंकम्मा की ओर ताकते हुए अपनी मां के पैरों से लिपट गये।

"माईजी, आपने मुझे बुलाया ?" नौकरानी ने आकर कहा।

"अरी, इनके हाथ-मुंह धोने के लिए पानी ला।" खांसी को रोकने की कोशिश करते और हांफते हुए वेंकम्मा बोली, "यह बेवकूफ लड़की है ! उठ री, तू धूप में चली आ रही है। बच्चों को खिला-पिलाकर तू भी खा लेना। अरी, तू देखती क्या है ? जिसका अपना कोई नहीं होता, उसका भगवान होता है। पुरानी बातों को याद करने से कुछ हाथ

लगने वाला नहीं है ! उस सबको भूल जा !"

वेंकम्मा उठ खड़ी हुई। शांतम्मा उसके पीछे चली।

शांतम्मा बीती बातों की याद नहीं करती। वह जानती है कि उन बातों की याद करने से कोई फायदा नहीं ! लेकिन वह सोच रही है कि आगे की जिन्दगी कैसे कटेगी ! अपनी बीमारी और थकावट के कारण वेंकम्मा ने उसे अपने बारे में कुछ भी कहने का मौका नहीं दिया था, फिर भी शांतम्मा के मन में घबराहट न थी, उल्टे वेंकम्मा का आदर उसमें आशा का संचार करने लगा।

वेंकम्मा को देखते ही या उसकी बातें सुनते ही कुछ लोग धारणा बना लेते हैं कि वह भोली-भाली स्त्री है, लेकिन यह मानने को कोई तैयार नहीं होता कि वह बिलकुल बुद्धू है। उसके जीवन के अंतिम छः वर्षों ने उसे दुनियादारी का काफी अनुभव करा दिया है। होटल खोलने के कुछ ही दिनों के अन्दर उसने पाया कि विभिन्न प्रकार के विचारों-वाले मनुष्यों को खिलाये जानेवाले भोजन पदार्थों की अपेक्षा चतुर वचनों से ज्यादा सन्तुष्ट किया जा सकता है। अन्य होटलों के सामने वेंकम्मा के होटल के भोजन-पदार्थों में वैसे कोई विशेषता नहीं थी, परन्तु उसका आदर-सत्कार पाकर हरकोई यह कहने को बाध्य हो जाता था कि वेंकम्मा बड़ी भली है ! किन्तु जिस चतुराई से पूर्ण वचनों द्वारा वह भली स्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुई, उस चतुराई को इस भयंकर थकावट के बीच भी वह छोड़ नहीं पाई।

एक दिन रात को राम सो रहा था। दूसरी खाट पर रवि लेटा था। शांतम्मा रवि को थपथपाते उसी खाट पर बैठी थी।

वेंकम्मा धीरे-धीरे चलकर कमरे के अन्दर आई। बोली, "बेटी, अभी तक जाग रही है, सो जा !"

विचारों में खोई शांतम्मा ने घूमकर देखा और दीवार से सटी आरामकुर्सी को लाकर चारपाई के पास लगा दिया। वेंकम्मा ने आरामकुर्सी पर बैठते हुए शांतम्मा की आंखों में तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

"शांता !" वेंकम्मा के कंठ में सहानुभूति थी।

बचपन में सब कोई शांतम्मा को इसी नाम से पुकारते थे। वह

भूली हुई मधुर पुकार बहुत समय बाद उसके कानों में पड़ी थी।

"जो लोग यह सोचकर डरते हैं कि हम जीवित नहीं रह सकते, वे लोग किसी भी हालत में मरे हुए लोगों से बेहतर नहीं। सुनो, मैं भी औरत हूं। जब वह स्वर्गवासी हुए, तब मैं भी यही सोचा करती थी। लेकिन तुमने अबतक यह समझ लिया होगा कि खाने की कमी न होने पर भी खिलानेवालों की चुभती बातों को सहना कितना कठिन होता है।"

खांसी आ जाने से वेंकम्मा थोड़ी देर हांफती रही। इस बीच शांतम्मा ने कहा, "होटल..." किन्तु उसका पूरा भाव मन में ही रह गया। वेंकम्मा ने हांफते हुए हाथ हिलाकर उसे बोलने नहीं दिया। खांसी थमने पर उसने कहा, "जब मैंने होटल खोला, तब मेरे देवर ने मुझे बुरा-भला कहा, डांटा भी।...वह कहता था—खाना बेचना पाप है। वंश की मर्यादा मिट्टी में मिल जाती है। पर मैंने उसकी बातों की परवा नहीं की। चार पैसे कमाने के बाद वही मेरे पीछे 'भाभी बड़ी अच्छी है!' कहता फिरता रहा। उसके लड़के को पाल-पोसकर मैंने ही तो बड़ा किया। उसकी शादी भी की। लेकिन मैंने उसे पैसे कभी नहीं दिये। मुझे शाप देते-देते ही वह मर गया। जिस लड़के को पाला, उसमें भी मेरे प्रति कृतज्ञता नहीं रही। वह कमबख्त भी मुझे छोड़कर दूर भाग गया। क्यों बेटी, नींद तो नहीं आ रही है न?"

"नहीं!" शांतम्मा ने कोई सवाल पूछना चाहा, मगर यह सोचकर डर के मारे वह पूछ न पायी कि उसका जवाब न मालूम कैसा मिले!

"चाचाजी!" नींद में राम बड़बड़ा रहा था। वेंकम्मा ने उस ओर दृष्टि दौड़ाई। वह हँस पड़ी। हंसी में खांसी ने भी साथ दिया।

"यह क्या अपने चाचा को बहुत प्यार करता था?"

"जीहां?"

"सो जाओ, बेटी! शायद नींद आती हो।" धीरे से उठकर लाठी के सहारे वेंकम्मा जाने लगी।

पर शांतम्मा को नींद नहीं आई।

"फूफीजी ! ..."

वेंकम्मा रुक गई ।

"फिर होटल खोलें, तो कैसा रहेगा !"

वेंकम्मा ठठाकर हँस पड़ी ।

"होटल को चलाना क्या मामूली बात समझती हो ? तुमको बोलना नहीं आता । मैं एक तिनका भी इधर-से-उधर नहीं हटा सकती ।...देखो, शांता ! मर्दों के सहारे के बिना होटल चलाना टेढ़ी खीर है !" थोड़ी देर रुककर फिर बोली, "समझो, मैंने अकेले ही चलाया ।"

वेंकम्मा मौन हो गई ।

"क्या इतनी कठिनाइयां हैं ?" अपने संदेह को दूर करने के विचार से शांतम्मा ने पूछा ।

"बेटी ! तुमसे नहीं बनेगा ! तुम्हें इसकी चिन्ता क्यों ? मेरे जीते तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों के लिए कोई कमी न होगी ! ठीक है न ?"

फिर खांसती हुई बोली, "तुम दस साल पहले जैसी थीं, अब भी वैसी हो ! तुममें कुछ नहीं बदला है ।" फिर हँसी-खांसी के साथ वेंकम्मा कमरे से बाहर हो गई ।

वेंकम्मा ने सोचा कि उसके जवाब से शांतम्मा संतुष्ट हो गई होगी, लेकिन वास्तव में वेंकम्मा शांतम्मा के दिल को पढ़ नहीं पाई । शांतम्मा केवल खाने के लिए जिन्दगी नहीं जीती । अगर खाने के लिए ही जीती तो गालियों को खाद्य पदार्थ के रूप में ग्रहणकर वह अपने ही घर पर रह जाती, लेकिन वह इस बात को भूल नहीं पाई कि अकेली अपने पैरों पर जीनेवाली नारी पर हिन्दू समाज कैसा कीचड़ उछालता है ! उसका पक्का विचार था कि इन सबके बावजूद निर्मल हृदय से, अपनी मेहनत की कमाई पर, जीने में जो आत्म-संतोष है, उसके सामने और सब तुच्छ है । चाहे जैसी भी कठिनाइयां आ जायं, अपने बच्चों के भविष्य को बनाने के लिए उसे किसी स्थायी जीविका का आधार खोजना होगा । यह निर्णय करके अपने बच्चे को हृदय से लगाकर शांतम्मा ने आंखें मूंद लीं ।

३ ||

वेंकम्मा का होटल फिर खुल गया। बहुत जल्दी ही दोनों जून सौ से ज्यादा आदमी उस होटल में खाने लगे।

शांतम्मा की लगन और उसीकी थोड़ी पूंजी से वेंकम्मा के नाम होटल चलने लगा।

कुछ ही दिनों में शांतम्मा को तरह-तरह के स्वभाववालों का परिचय प्राप्त हुआ।

एक दिन एक ग्राहक ने जाकर पूछा, "खाने का कितना लेते हैं ?"

"एक रुपया !"

"ओह, यह तो बहुत ज्यादा है।"

उसकी दृष्टि में वासना थी। व्यंग्य था। शांतम्मा उसकी ओर देख न सकी। सिर झुकाकर भीतर चली गई।

"पर्दा रखती हो, तो होटल कैसे चलाती हो ? आओ, दही तो परोसो !" शांतम्मा दही परोसने लगी।

उस व्यक्ति ने मंद स्वर में कहा, "केवल खाना ही मिलता है? या..."

शांतम्मा की आंखों से आग बरसने लगी। खानेवाला व्यक्ति जोर से हँस पड़ा। बोला, "तुम नहीं जानतीं ? बड़े-बड़े होटलों में खाने के साथ कमरे भी देते हैं।"

शांतम्मा चुपचाप अन्दर चली गई।

एक महीना बीता। शांतम्मा का मन दिन-प्रतिदिन इस धंधे से उचटने लगा। वेंकम्मा जानती थी कि कभी ऐसा भी दिन आयगा !

एक रोज़ वेंकम्मा का नाम जपते दरवाजे के पास बरामदे में खड़े खां साहब ने शांतम्मा को देखा—"हैं, है, कितनी बड़ी बेटी है, वेंकम्माजी!"

जवाब की प्रतीक्षा किये बिना वह पिछवाड़े गया। हाथ-मुंह धोया। खाने आ बैठा।

शांतम्मा ने पत्तल लगाई। राम ने खाली गिलास रखा।

"अरे, यह तुम्हारा बच्चा है ?" खांसाहब ने पूछा ।

शांतम्मा ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया । "अरे रे ! राजा के लच्छन हैं ?...वाह यह ! यह बड़ा आदमी बनेगा !" खांसाहब ने बच्चे का अभिनंदन किया ।

शांतम्मा का हृदय पुत्र-प्रेम से भर उठा । खांसाहब की बात में अतिशयोक्ति नहीं । राम का चेहरा ही ऐसा है कि हर किसीको आकृष्ट कर लेता है । उसका रंग भी गोरा है ।

रवि पिता पर गया है । श्याम वर्ण । वह एक कोने में बैठा देख रहा था ।

खाना परोसने के बाद एक कौर मुंह में रखते हुए, दीवार से सटकर बैठे रवि को देख भर्राये स्वर में खांसाहब चिल्ला पड़े, "अरे, बच्चा, तू कौन है !"

रवि ने क्रोधभरी दृष्टि से उसकी ओर उंगली का ऐसा संकेत किया, मानो वह कह रहा हो—खबरदार !

"वाह, तू मुझे उंगली दिखाता है !" गरजते खांसाहब उठने को हुए । रवि डर के मारे चिल्ला पड़ा । शांतम्मा रवि को गोद में लेकर भीतर चली गई । थोड़ी देर बाद खांसाहब की गर्जन सुनाई दी—"अरी माई !" शांतम्मा लौट आई ।

"रसम नहीं है ?"

"क्यों नहीं, है तो ।"

शांतम्मा 'रसम' परोस रही थी । खांसाहब उसकी ओर ताकते हुए बोल उठे, "अरे, यह चेहरा भी कैसा खूबसूरत है !"

शांतम्मा के हाथ से घबराहट में रसम का पात्र छूट गया ।

"या अल्लाह !" कहते खांसाहब क्रोध से उठ खड़े हुए । लगे चिल्लाने । शांतम्मा हटकर दूर जा खड़ी हुई । वेंकम्मा घबराकर घटना-स्थल पर आ पहुंची ।

"क्या हुआ, शांता ?" वेंकम्मा ने आतुरता से पूछा ।

"रसम का बर्त्तन हाथ से फिसल गया ।" डरते हुए शांतम्मा ने जबाब दिया ।

ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते खांसाहब वहां आ पहुंचे। वेंकम्मा ने शांत शब्दों से उन्हें समझा-बुझाकर रवाना कर दिया।

शांतम्मा ने जान-बूझकर तो पात्र हाथ से नहीं गिराया था, लेकिन खांसाहब के मुंह से शराब की गंध निकलते देख शांतम्मा का हाथ इसलिए कांप उठा कि वह उस हालत में कुछ भी कर सकता था!

"क्यों, बर्तन हाथ से फिसल गया?" वेंकम्मा ने शांतम्मा की आंखों में देखा।

"रोती क्यों हो, बेटी?" वेंकम्मा ने प्यार से पूछा।

"मैं आइंदा परोस नहीं सकती। फूफी, किसी नौकरानी का इंतजाम करो!" शांतम्मा आंचल से आंसू पोंछते हुए दूसरे कमरे में चली गई।

वेंकम्मा के चेहरे पर म्लान हँसी खिल उठी। वह मन-ही-मन गुन-गुनाने लगी, "मैं पहले से जो सोच रही थी, वही हुआ।"

दूसरे दिन से शांतम्मा ने सिर्फ खाना बनाने का भार अपने ऊपर लिया। उस बीमारी की हालत में भी वेंकम्मा दरवाजे पर तिपाई लगाये खाने के पैसे वसूलने बैठती थी।

खाना परोसने के लिए वेंकम्मा ने एक औरत का इंतजाम तो किया, लेकिन उसको डर था कि उस औरत की जिन्दगी से परिचित कोई आदमी उसे देख लेगा तो फिर उस होटल में पैर भी नहीं रखेगा। लाचार होकर वेंकम्मा ने झाड़ू देनेवाली वेंकी को साफ कपड़े पहनाकर परोसने के काम में लगा दिया था।

रसोई बनाते समय शांतम्मा का मन दुःख के भार से दबा जा रहा था। दो-तीन बार अचानक ही उसकी आंखों से आंसू निकल पड़े।

"मां, चाचाजी आये हैं।" अचानक कूदते-उछलते आकर राम ने कहा।

शांतम्मा आंसू पोंछकर रवि को गोद में ले बरामदे में आई।

"अच्छी तरह हो न, भाभी?" खड़े-खड़े चन्द्रय्या ने पूछा।

शांतम्मा ने रवि को गोद से उतारकर चन्द्रय्या के लिए चारपाई बिछा दी।

चन्द्रय्या खाट पर बैठ गया। वेंकम्मा ने सोचा था कि कोई खाने के लिए होटल में आया हुआ आदमी है। पर शांतम्मा की बातों से उसे मालूम हुआ कि चन्द्रय्या शांतम्मा का देवर है।

"बेटा, मैं भूल ही गई। बूढ़ी जो हो गई। आंखों से साफ नहीं दीखता। अपना नाम क्या बताया, बेटा ?"

"चन्द्रय्या।"

"रामय्या के छोटे भाई हो न ?" वेंकम्मा ने पूछा।

"जीहां !" वेंकम्मा के सवाल का जवाब देकर वह शांतम्मा की ओर देखने लगा।

"सुभद्रा मजे में है न ?" शांतम्मा ने पूछा।

"हां !" चन्द्रय्या के कंठ में विरक्ति का भाव ध्वनित हुआ।

"चन्द्रय्या, मैं कुछ पूछूं तो बुरा मत मानना।" वेंकम्मा का यह प्रश्न सुनकर शांतम्मा सहम गई कि न मालूम वह क्या पूछ बैठेगी ! इधर कुछ दिनों से शांतम्मा को मालूम हो गया था कि वेंकम्मा बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के ऐसे सीधे सवाल पूछ बैठती है, जिससे लोग तिलमिला जाते हैं।

"बातें बाद में होंगी। पहले खाना खाओ, चन्द्रय्या !" शांतम्मा ने कहा।

अपने पास आये रवि का सिर सहलाते हुए चन्द्रय्या बोला, "खाने की क्या जल्दी है, भाभी !" फिर वेंकम्मा की ओर मुड़कर कहा, "आप कुछ पूछ रही थीं ?"

चूल्हे पर किसी चीज के जल जाने की गंध आई। शांतम्मा घबराते हुए दौड़ गई।

"भाई के मरते ही भाभी और बच्चों को भी कहीं छोड़ देना अच्छी बात समझते हो, बेटा ?" वेंकम्मा ने पूछा।

"मेरा ऐसा उद्देश्य कभी नहीं था।...भाभीजी अपनी ही इच्छा से चली आई हैं।" चन्द्रय्या ने संक्षेप में जवाब दिया।

खाने के लिए आये हुए दो ग्राहक वेंकम्मा के हाथ में पैसे देकर भीतर चले गये।

"मैं यकीन नहीं कर सकती, बेटा !" अपनी खांसी को जबर्दस्ती रोकने का प्रयास करते हुए वेंकम्मा फिर बोली, "रामय्या ने अपने हाथों से तुम्हारी शादी की। उन दिनों में क्या तुम एक पाई भी कमाते थे ? अगर रामय्या के मन में अपना स्वार्थ होता तो क्या तुम आज इस हालत में होते ?"

"फूफी !" उसी वक्त भीतर से आंगन में क़दम रखते शांतम्मा ने घबराये स्वर में पुकारा। वेंकम्मा ने शांतम्मा की ओर देखा। उसकी आंखें सजल थीं।

"भाभीजी, ये जो कहती हैं, उसमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है।" ये शब्द कहते हुए चन्द्रय्या चारपाई से उठ खड़ा हुआ। शांतम्मा ने चन्द्रय्या के चेहरे पर क्रोध की रेखाएं स्पष्ट रूप से देखीं।

"वेंकम्माजी, आपने मुझपर जो आरोप लगाया कि मैंने अन्याय-पूर्वक अपनी भाभी और उनके बच्चों को घर से निकाल दिया, इससे मुझे तो दुःख नहीं होता है। मुझे वास्तव में दुःख इस बात का है कि लोग कहते हैं, विधवा अपने घर पर रह न पाई और बाजार में आकर होटल खोल बैठी है। तब मेरा दिल फट-सा जाता है।" चन्द्रय्या का चेहरा लाल हो गया था।

वेंकम्मा संकोच में पड़ गई। उसने सोचा था कि चन्द्रय्या को डांटने से शांतम्मा प्रसन्न हो जायगी, लेकिन उसने यह कभी न सोचा था कि उसकी बातों से शांतम्मा को ही दुःख पहुंचेगा।

"तुम दोनों के बीच में पड़ने से मुझे क्या ?" गुनगुनाते लाठी टेकते वेंकम्मा भोजनालय की ओर चली गई।

चन्द्रय्या ने बटुआ खोलकर नोट निकालते हुए कहा, "भाभीजी, मैंने घर बेच दिया है। बंधक के रुपये चुकाने पर छःसौ रुपये बच गये हैं।"

"किसलिए बेचा ?" शांतम्मा के कंठ में रोष था।

"क्यों नहीं बेच सकते ? भूल से ही बेच दिया है, समझ लीजिए ! जो लोग उस घर को अपना समझते थे, वे ही वहां से चले गये तो अब मेरा कौन है ? मेरे कोई लड़का-लड़की तो है नहीं ! वंगरय्या के

ओसारे को भाड़े पर लेकर हम पति-पत्नी उसीमें रहते हैं।"

सौ रुपयों के तीन नोट निकालकर चन्द्रय्या ने कहा, "ये लीजिए, भाभीजी !"

"मुझे जरूरत नहीं।" शांतम्मा के स्वर में व्यथा छिपी थी।

"चाहे आपको जरूरत हो, या न हो, लेकिन मैं अपने भाई के रुपये नहीं ले सकता। आपको लेने ही पड़ेंगे।"

"हम घर से दूर रहते हैं, यहांपर भी हमें दुःख देना चाहते हो ?" शांतम्मा की आंखों में पानी भर आया।

शांतम्मा की बातों से चकित हो चन्द्रय्या ने पूछा, "पास रहते समय क्या मैंने आपको दुःख दिया था ?"

"नहीं तो, तुम यह क्या कहते हो ? घर किसलिए बेचना था ? तुमसे बेचने के लिए किसने कहा ?" शांतम्मा का कंठ रुद्ध हो गया।

शांतम्मा के दिल में घर के प्रति जो ममता थी, उस कारण से उसने ये बातें नहीं कही थीं, बल्कि अपने देवर को किराये के घर में रहते वह देख नहीं सकती थी। लेकिन उसकी सद्भावना भाषा के रूप में व्यक्त नहीं हो पाई। चन्द्रय्या फिर खाट पर बैठ गया।

"भाभीजी, अगर मुझे यह विश्वास होता कि आप फिर लौट कर आनेवाली हैं तो मैं घर कभी न बेचता। लेकिन अब मैं मानता हूं कि आपकी सलाह के बिना घर बेचने की हिम्मत करना मेरी भूल है !" ये शब्द कहते-कहते वह धीरे-से शांतम्मा के पास आया और पूछा, "भाभीजी, क्या आप जानतीं थीं कि घर एक हजार रुपये के लिए गिरवी रखा हुआ है ?"

"जानती थी !"

'मैंने इस अविश्वास से घर बेचा कि मैं इस जन्म में वह ऋण चुका नहीं सकूंगा।...फिर भी मुझे मालूम होता कि यह काम करने से आपको दुःख पहुंचेगा तो मैं कभी न बेचता।" थोड़ी देर ठहरकर गिड़गिड़ाते स्वर में वह बोला, "ये रुपये लीजिए, भाभीजी, वरना मुझे दुःख होगा !"

"फिलहाल मैं खाने के लिए परेशान नहीं हूं। ये रुपये तुम अपने

ही पास रखो।"

"आप जानती हैं कि मैं खाने के लिए परेशान भी क्यों न होऊं, फिर भी परायों का धन अपने पास नहीं रखता!" चन्द्रय्यां के शब्दों में स्पष्टता थी।

"पराया", शब्द चाहे चन्द्रय्या ने जान-बूझकर न कहा हो, पर वह शांतम्मा के दिल में तीर की भांति जा चुभा।

"हां,...मैं पराया हूं!" अपने दुःख को कंठ में ही दबाते हुए हाथ फैलाकर शांतम्मा ने कहा, "लाओ दे, दो!"

चन्द्रय्या ने भाभी के हाथ में रुपये रखते हुए कहा, "जो अफवाहें मुझे लेकर उड़ाई गईं, वे काफी हैं, भाभीजी! मैं अब इस अपवाद से बचने के लिए इतनी दूर आया हूं कि चन्द्रय्या घर बेचकर भी अपनी भाभी का हिस्सा दबाये बैठा है। इसीलिए देता हूं। अच्छा, भाभीजी, अब मैं जाता हूं!"

"खाना खाकर जाना।"

"नहीं, मुझे जरूरत नहीं।"

शाल से आंखें पोंछता हुआ चन्द्रय्या चला गया।

उस दिन रात को वेंकम्मा माला फेर रही थी। शांतम्मा को उस समय चारपाई के पास खड़े देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"क्यों शांता, क्या बात है?" उसने पूछा।

"चन्द्रय्या मकान से मिले तीनसौ रुपये दे गया है, फूफी!"

"मैं जानती हूं, बेटी!"

शांतम्मा को मालूम था कि वेंकम्मा यह बात जानती है, लेकिन उसने इसलिए यह बात प्रकट की कि वह जो कुछ बताने जा रही है, उसकी यह भूमिका बन जाय! पर वेंकम्मा के उत्तर ने उसे बोलने का मौका नहीं दिया। वह मौन रही।

"ये रुपये तुम अपने पास रखो, फूफी!"

"किसलिए, बेटी?"

"कल से होटल बंद।"

वेंकम्मा जोर से हँस पड़ी। खांसी के दबाव ने उसे आगे बोलने

नहीं दिया। पांच-छः मिनट तक खांसी से संघर्ष करके हांफते स्वर में फिर वेंकम्मा बोली, "मैं इस वक्त बोल नहीं पाती हूं। शांता, तुम जो उचित समझो, वही करो।" माला तकिए के नीचे रखकर; वेंकम्मा ने कमर सीधी कर ली।

४ ||

वेंकम्मा ने जैसे अचानक होटल खोला था, वैसे तीन मास पूरे होने के पहले ही उसे बंद कर दिया। होटल बंद करने का वेंकम्मा को दुख जरूर था, पर वह अपने अवसान-काल में एक सहृदया नारी को दुःख नहीं देना चाहती थी। उसे इस बात का डर भी था कि कहीं वह कोई ऐसी बात भूल से न कह दे, जिससे शांतम्मा अपने बच्चों के साथ चली जाय। वेंकम्मा का यह पूर्ण विश्वास था कि इस बुढ़ापे में उसके रोगी शरीर की सेवा कर सकनेवाली मात्र शांतम्मा है।

कुछ ही दिनों में राम उस गली से भली-भांति परिचित हो गया। लड़खड़ाते कदमों से वह गली के एक छोर से दूसरे छोर को नाप देता, और भूख लगने पर घर लौट आता।

उस गली में गाड़ियों का आवागमन नहीं के बराबर था, इसलिए राम का यह क्रम निर्विघ्न चलता था। उस गली में वेंकम्मा के मकान के सामने राव बहादुर का महल था, जो राम के दिल को लुभा गया था। इसलिए जबतब वह अपने नन्हें-नन्हें पैर बढ़ाते फाटक पार कर अहाते से जाता और फूलों के गमलों से खेला करता।

एक दिन राम को फूलों के पौधों से खेलते देख माली ने धमकाने की कोशिश की। पर राव बहादुर ने महल की छत पर से राम को देखा और माली को आदेश दिया कि जब कभी वह लड़का अहाते के अन्दर आये, वह उसे न रोके। राम की समझ में पूरी बातें तो नहीं आईं, लेकिन उसने इतना समझ लिया कि माली ने उसे रोक कर गालियां खाईं।

उस दिन से लेकर राम बड़ी आजादी के साथ उस अहाते में जाता, वहांपर पड़ी कुर्सियों पर ठाठ से बैठ जाता। कभी माली क्रोधभरी दृष्टि से देखता तो राम कुर्सी पर बैठे-बैठे छत की ओर उंगली दिखा देता। माली का गुस्सा काफूर हो जाता और वह हँस पड़ता।

एक दिन राव बहादुर बैठक में बैठे ज्योतिषी से परामर्श कर रहे थे, उसी समय उन्होंने राम को फाटक खोलकर भीतर आते देखा। उस लड़के की ओर संकेत करते राव बहादुर ने ज्योतिषी से पूछा, "पंडितजी, आपने उस लड़के को देखा ?"

"मुन्ना, यहां आ जाओ !" राव बहादुर ने बड़े प्यार से राम को अपने पास बुलाया। बच्चे का छोटा-सा दिल कई दिनों से ऐसे मौके का इंतजार कर रहा था, अतः वह बिना किसी तरह के संकोच के आराम से राव बहादुर के निकट पहुंच गया।

"पंडितजी, इस लड़के का हाथ देखिये !"

राव बहादुर ने ही उस नन्हें से हाथ को पंडितजी की ओर बढ़ा दिया। पंडितजी ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा, "इसकी जन्म-पत्री में राजा का योग है ! यह लखपति का पुत्र बनेगा !"

ज्योतिषी की बातों पर राव बहादुर मुस्करा उठे। पंडितजी ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से जमींदार को देखते हुए पूछा, "क्यों, आप हँसते किसलिए हैं ?"

"राजा का योग हो सकता है, किन्तु वह लखपति का पुत्र नहीं !" राव बहादुर ने कहा।

"राजयोग ही उसे लखपति का पुत्र बना देगा ! इसका मुझे पूरा भरोसा है।" पंडितजी ने दृढ़ता के साथ अपने कथन का समर्थन किया।

तभी फाटक के पास एक मोटर आकर रुकी। माली ने दौड़कर फाटक खोला। मोटर भीतर आई।

राव बहादुर उठ खड़े हुए, और बड़ी प्रसन्नता के साथ आगंतुक का स्वागत किया, "आइए !"

जमींदार गंगाधर राव गाड़ी से उतर पड़े। मुस्कराते हुए राव बहादुर के स्वागत-संभाषण के बाद उसकी बगल में एक कुर्सी पर

आ बैठे ।

"आप हमको भूल तो नहीं गये ?" पंडितजी ने जमींदार की ओर देखकर कहा । गंगाधर राव ने तीखी दृष्टि से देखा । अचानक खड़े हो हाथ जोड़ कर बोले, "क्षमा कीजिए !"

"कोई बात नहीं, याद रखते हैं । धन्य भाग !" फिर अभिमान के साथ ज्योतिषी बोला, "हमने जो भविष्यवाणी दी थी, वह कहांतक सफल हुई ?"

ज्योतिषी की बात पूरी भी न हो पाई थी कि जमीन्दार बोल उठा, "सौ फीसदी सच निकली ।" ज्योतिषी को जवाब देकर जमींदार राव-बहादुर की ओर मुड़े और बोले, "आपने पंडितजी की प्रतिभा तो देखी होगी ?"

राव बहादुर मंद हास करते बोले, "मेरे अकेले की बात ही क्या, सारा गुंटूर जिला पंडितजी की प्रतिभा से परिचित है ।"

मोटर के भोंपू की आवाज सुनकर सबने उस ओर देखा । राम राव बहादुर की गोद में से न मालूम कब खिसक गया था और अब मोटर की अगली सीट पर बैठा स्टियरिंग पकड़े, उसे इधर-उधर घुमाते, बीच-बीच में भोंपू बजा रहा था ।

"मैंने जो बातें बताई, उन्हें साक्षात देख ही रहे हैं । उस बालक का योग गाड़ियों पर घूमने का है ।" ज्योतिषी बड़ी तृप्ति के साथ हँस पड़ा ।

"कौन है वह बालक ?" जमीन्दार ने बड़ी आतुरता से पूछा ।

"अपनी ही जाति का है, लेकिन गरीब घर का है ।" राव बहादुर ने शांति से उत्तर दिया ।

जमींदार गंगाधर राव धीरे-से उठकर गाड़ी के पास गए और उस बालक को अच्छी तरह से देखा । राम गाड़ी में ऐसे बैठा था कि जैसे उसे किसीकी परवा न हो । वह इस प्रयत्न में डूब गया था कि बड़ों के हाथों में जाकर उनकी इच्छानुसार चलनेवाली गाड़ी मेरे हाथों से क्यों नहीं चल सकती । इसी उधेड़बुन में राम खो गया था ।

"देखो, मुन्ना ।"

गंगाधर राव की पुकार सुनकर राम ने उसकी ओर देखा। पहले वह थोड़ा सहम गया, फिर जमींदार के चेहरे पर मुस्कराहट खिलती देख लापरवाही से वह अपने काम में निमग्न हो गया।

"तुम्हारा क्या नाम है मुन्ना।"

"लाम !" स्टियरिंग घुमाने के प्रयत्न में चेहरे को घुमाये बिना बालक ने उत्तर दिया ?

यह विनोद देखते हुए जमीन्दार के पीछे राव बहादुर और ज्योतिषी भी आ खड़े हुए।

"क्षमा कीजिए। लड़का नासमझ है।" कहीं से एक नारी का कंठ सुनाई दिया। सबने उस दिशा में देखा। एक खंभे के पीछे खड़ी हो शांतम्मा ने कंपित स्वर में कहा, "राम, उतर आओ बेटा।"

"मैं नहीं आऊंगा।"

राम का यह उत्तर सुन कर वे तीनों हँस पड़े।

उस हँसी के पीछे जो भाव ध्वनित था, उसे शांतम्मा समझ न पाई, उल्टे उसे अपनी अवहेलना मानकर मन-ही-मन दुखी हुई और क्रोधभरा चेहरा लिए गाड़ी के पास गई।

"गाड़ी से उतरो !"

राम अपनी मां को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। शांतम्मा अपने दोनों हाथ गाड़ी में बढ़ाकर उसे उठाने को हुई।

"मैं नहीं आऊंगा।" राम रोने लगा। वह स्टियरिंग को जोर से पकड़े हुए था।

"कोई बात नहीं, बहन ! खेलने दो ! उसका मन रखो ! थोड़ी देर बाद उसे भिजवा देंगे।" जमींदार ने कहा। शांतम्मा ने उनके मुख पर निगाह डाली। उसने तुरंत ताड़ लिया कि उनके मुंह पर अवहेलना की भावना लेशमात्र भी नहीं है, बल्कि लड़के के प्रति जो वात्सल्य है, उसीके कारण वे सब हँस पड़े थे। वह कुछ बोले बिना सिर झुकाये वहां से चली गई।

शांतम्मा के घर लौटने के दो घंटे बाद अपने दोनों हाथों में घी के लड्डुओं की दो पुड़ियां लेकर राम लौटा। उसने ऐसा चेहरा बना

लिया था, मानो किसी लड़ाई में भारी विजय पाकर लौट आया हो। उसने पुकारा, "मां!"

पिछवाड़े काम पर लगी शांतम्मा राम की पुकार सुनकर भीतर आई।

"क्या बात है, बेटा?"

"देखो,...मुझे..." राम ने उन नन्हें हाथों की पुड़ियां दिखाईं।

"उस वक्त राम का चेहरा देखकर शांतम्मा पुलकित हो उठी और उसे गोद में लेकर जी भरकर चूमने लगी।

गिरते-पड़ते दरवाजे के पास दौड़नेवाला रवि राम के हाथ में पुड़िया देखकर रो पड़ा। शांतम्मा समझ गई। उसने राम के पास पहुंचकर कहा, "बेटा, लाओ तो पुड़िया देखें!"

"मैं नहीं देता।" मुंह बनाकर राम ने कहा।

राम की बात सुनकर रवि की आशा जाती रही। वह फूट-फूट कर रोने लगा।

शांतम्म ने राम के हाथ की पुड़िया खोलकर एक लड्डू निकाला।

राम यह जबर्दस्ती सहन न कर पाया। पुड़िया फेंककर, जमीन पर लोटते हुए चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बच्चों की चिल्लाहट से सारा घर गूंज उठा। वेंकम्मा लाठी टेकते वहांपर आ पहुंची।

विरक्ति तथा उपेक्षा के भाव से ताकनेवाली शांतम्मा को देख कर वेंकम्मा ने पूछा, "क्या बात है, बेटी!"

"बात कुछ नहीं है। इसकी शैतानी देखो, फूफी!"

कहते-कहते शांतम्मा धरती पर गिरी पुड़िया ले आई और राम के हाथ में ठूंसते हुए बोली, "रो, खूब रो! दूसरों को, खाते सह नहीं पाता! ...पेटू है!" राम को खरी-खोटी सुनाकर रवि को गोद में ले शांतम्मा पुचकारने लगी, "मेरे राजा बेटे, तुझे मैं जलेबी लाकर दूंगी!"

अपनी ज़िद के पूरे होने पर राम तो चुप हो गया, मगर रवि रोनी सूरत लेकर बीच-बीच में लड्डू की पुड़ियों की ओर उंगली दिखाता रहा।

वेंकम्मा ने शांतम्मा से कोई उत्तर तो नहीं पाया, किन्तु घटना को अपनी आंखों से देख मन में सोचा—"इस दुनिया में ऐसी किस्मत भी कितनों को मिलती है! राम-लक्ष्मण सरीखे बेटे हैं।" मन-ही-मन गुनगुनाते वेंकम्मा फिर अपने कमरे के भीतर चली गई। लेकिन वह यह सोच नहीं पाई कि राम अपने भाई को खाना न देनेवाला स्वार्थी है!

भोजन समाप्त कर वेंकम्मा और शांतम्मा बरामदे में बैठी थीं कि अचानक राव बहादुर के यहां से बुलावा पाकर चकित हो गईं।

"किसलिए बुलावा भेजा है, बेटा?" वेंकम्मा ने राव बहादुर का संदेश लानेवाले नौकर से पूछा।

"और क्या! आप लोगों की किस्मत खुल गई। जल्दी आ जाइए।" असली बात बताये बिना नौकर खुशी-खुशी कहता जा रहा था।

वेंकम्मा चकित नेत्रों से नौकर की ओर ताकती रही।

"मैं भी क्यों जाऊं, फूफी?" सहमते दिल से शांतम्मा बोली।

"आप दोनों को चलना होगा! सब लोग आपके इंतज़ार में बैठे हैं। देर न कीजिए।" नौकर ने उतावली के साथ कहा।

"असली बात बताओ न!" वेंकम्मा के स्वर में झुंझलाहट थी।

"मुझसे सिर्फ आप लोगों को बुलाने के लिए कहा गया है और मैंने कह दिया। बाकी जो बातें करनी हैं, वे ही आप से करेंगे।" नौकर से स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया।

राव बहादुर की आज्ञाओं का आदर न करनेवाला व्यक्ति तेनाली-भर में ढूंढ़े भी कोई नहीं मिल सकता। उनका निमंत्रण पाने के लिए भी आवश्यक जमीन-जायदाद, प्रतिष्ठा होनी चाहिए। ये ही बातें एक-बारगी वेंकम्मा के दिमाग में चक्कर काट गईं।

"शांता, उठ री!"

"क्यों, फूफी?"

"रावबहादुर साहब ने खबर भेजी है! न जाओगी तो बुरा होगा!... किसी अच्छे काम के लिए ही बुलाया होगा! संकोच करने की क्या जरूरत है?" ये शब्द कहते हुए लाठी के सहारे वेंकम्मा उठ खड़ी हुई।

हांफते हुए रावबहादुर के आंगन में शांतम्मा के साथ प्रवेश करती वेंकम्मा को देख राव बहादुर ने कहा, "आइए, वेंकम्माजी! दोनों उधर कुर्सियों पर बैठ जाइए।"

इस अप्रत्याशित प्रतिष्ठा पर वेंकम्मा का हृदय आनन्द से भर उठा।

"हम तो औरतें हैं, फिर विधवाएं! हम ऐसी इज्जत के काबिल नहीं।" इन शब्दों के साथ लाठी नीचे रखकर वेंकम्मा जमीन पर लुढ़कने को हुईं। इतने में राव बहादुर बोल पड़े, "अरे, यह क्या करती हो, बूढ़ी माई! कम-से-कम उस बेंच पर तो बैठ जाइए!"

"कितना इज्जतदार परिवार है!" गुनगुनाते वेंकम्मा लाठी लेकर उठने को हुईं तो खांसी का प्रकोप हुआ।

शांतम्मा पहले से ही लज्जा के भार से दबी जा रही थी। वेंकम्मा की खांसी ने उसे और दबा दिया। वह किवाड़ की आड़ में जाकर खड़ी हो गई।

वेंकम्मा की खांसी थम गई। उसने अपने स्थूल शरीर को बेंच पर डाल दिया।

"शायद वह भीतर चली गई।" जमींदार गंगाधरराव शांतम्मा की दिशा में देखते हुए बोले।

"उसको वहीं पर रहने दीजिए। भले घराने की बहू है! उसे मर्दों के सामने खड़े होने की आदत नहीं है।" वेंकम्मा ने समझाया।

"वह तुम्हारी क्या लगती है, वेंकम्मा?" जमींदार ने पूछा।

"मेरे भाई की लड़की है।" वेंकम्मा ने कहा।

"उसके पति का नाम क्या है?"

वेंकम्मा ने सिर उठाकर प्रश्न करनेवाले व्यक्ति की आंखों में देखते हुए जबाव दिया, "वैद्य रामय्या चौधरी।"

"आं, ऐसी बात है!" जमींदार आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले, "तब तो हमारे वंश की..." वह अपनी बातें पूरी भी न कर पाये कि बीच में टोकते हुऐ वेंकम्मा ने पूछा, "आपके वंश का नाम क्या है?"

"ये गंगाधररावजी, सिरिमल्ला के जमींदार है।" ज्योतिषी ने गंभीर कंठ से उत्तर दिया।

हठात् वेंकम्मा के चेहरे पर भय की रेखाएं ऐसी खिच गईं, मानों उसपर बिजली गिर गई हो ! ओफ ! मैं भी कैसी बेवकूफ औरत हूं । लज्जा को छोड़ सामने ही बैठ गई ! उनके सामने बैठ जाऊं तो हमारे वंश की मर्यादा मिट्टी में मिल जायगी। घबराहट के साथ वेंकम्मा फिर उठने को हुई । गंगाधरराव ने उठकर विनय के साथ समझाया, "आप माता के समान हैं। बच्चों के सामने लज्जा किसलिए ? बैठिए।"

वेंकम्मा की घबराहट तथा उसकी बातचीत को सुनकर शांतम्मा ने सोचा कि गंगाधरराव कोई बड़े आदमी होंगे।

"आप मेरे नजदीक के रिश्तेदार है, लेकिन..." वेंकम्मा के आंसू छलक आये। उसके रोने का कारण यह भले ही न हो कि गंगाधरराव जमींदार हो गये हैं, किन्तु उसमें यह भाव जरूर था कि हमारी जिंदगी ऐसी ठोकरें खानेवाली हो गई है !

"धन-दौलत कभी टिकते नहीं हैं, मां ! मनुष्य के लिए इज्जत चाहिए। आज का लखपति कल कंगाल हो सकता है !" जमींदार गंगाधरराव बोले। इन शब्दों को सुनकर वेंकम्मा ने उनके चरित्र का यह मूल्यांकन नहीं किया कि वह सरल, निस्स्वार्थ तथा निरभिमानी हैं, बल्कि उसका दृढ़ विश्वास हो गया कि उसके साथ जमींदार का कोई जरूरी काम आ पड़ा है।

"आपने यह नहीं बताया कि हमें क्यों बुलाया है ?"

"वह काम आपके हाथों में है और आप चाहें तो बन सकता है !"

"कहिए ! मुझसे बन सकता है तो आप जानते हैं कि वेंकम्मा कभी वचन देकर मुकर नहीं सकती।" वेंकम्मा ने अपनेको दृढ़-प्रतिज्ञ होने का निश्चय जतलाया।

"वेंकम्मा !"

वेंकम्मा ने उस व्यक्ति की ओर देखा।

उस ध्वनि में एक विशिष्टता थी। ज्योतिषी ने कहना प्रारंभ किया :

"गंगाधररावजी के संबंध में मुझे विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। आप भी बहुत सारी बातें जानती हैं, किन्तु कुछ ऐसी भी बातें मैं जानता हूं, जो आप नहीं जानतीं! ये दो बड़े-बड़े गांवों के जमींदार हैं। लक्ष्मी-पुत्र हैं! नामी आदमी हैं। लेकिन आप बताइए कि इनकी जमीन-जायदाद व जमींदारी के अधिकारी बनने की योग्यता किसमें है?" गर्दन झुकाकर ज्योतिषी ने कहा।

"और किसकी, उनकी संतान की है।"

दुनियादारी में चतुर वेंकम्मा ने बड़ी सरलता से उत्तर दे दिया। इसपर ज्योतिषी हँस पड़ा। वेंकम्मा विस्मय के साथ उसकी ओर देखने लगी।

"हां, उसीकी कमी है! वह भाग्य अगर आपके होनहार राम को मिल जाय, तो आप क्या समझेंगी?" ज्योतिषी ने प्रश्नभरी दृष्टि से वेंकम्मा की ओर देखा।

झुर्रियों वाले वेंकम्मा के चेहरे के रंग बदलने लगे। उसका चेहरा भय व संभ्रम से भर उठा। एक ऐसा अनिर्वचनीय आनन्द उसके मुखमण्डल पर छा गया कि वह सहसा कोई उत्तर दे न पायी।

लेकिन किवाड़ की आड़ में खड़ी शांतम्मा का हृदय उस हालत में अपने बच्चे को पराये व्यक्ति के हाथों में सौंपने से न मालम क्यों संकोच करने लगा।

"इससे बढ़कर आनन्द की बात क्या हो सकती है, पंडितजी! राम जमींदार बनने वाला है, यह बात मेरे और उसकी मां के लिए भी प्रसन्नता की ही होगी।" वेंकम्मा के मुंह से निकल गया।

राम की जननी के रहते वेकम्मा का उससे पूछे बिना वचन देना शांतम्मा के लिए असहनीय प्रतीत हुआ, परन्तु कठिनाइयों को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर सकने का स्वभाव होने के कारण शांतम्मा को कुछ नहीं सूझा कि इस स्थिति में उसे क्या निर्णय करना है।

"बेटी, इस संबंध में तुम्हारा विचार क्या है?" पंडितजी ने शांतम्मा से पूछा। दुख से व्यथित शांतम्मा के हृदय से कोई समाधान नहीं निकला।

"वह भोली है ! जानती ही क्या है ? वह थोड़े ही मना करेगी !"

वेंकम्मा ने यह बात योंही कह दी, पर शांतम्मा के चेहरे पर क्रोध उभरने लगा। सहसा वह किवाड़ की आड़ से बाहर आई और बोली, "मुझे यह पसंद नहीं। मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकती !"

शांतम्मा परेशानी का अनुभव करते हुए वहां से चल दी।

यह अप्रत्याशित उत्तर सुनकर सब स्तम्भित रह गये और उस ओर देखते रहे, जिधर से शांतम्मा घर लौट रही थी।

५ ||

पर शांतम्मा को अंत में अपना विचार बदलना पड़ा। वेंकम्मा पर ज़मींदार की बातों का गहरा असर पड़ा। उसने शांतम्मा के दिल में ऐसे विचार बिठा दिये कि उसका पुत्र राम जमींदार बनेगा और वह जमींदार की मां बनेगी !

शांतम्मा की ममता राम पर अपार थी, किंतु वेंकम्मा के तर्क ने उसे निरुत्तर कर दिया। विवश होकर शांतम्मा को अपनी ममता के विपरीत 'हां' कहना पड़ा, यद्यपि उसका दिल रो रहा था।

जमींदार ने राव बहादुर के घर में राम को विधिपूर्वक दत्तकपुत्र बनाया। त्रयोदशी सोमवार के दिन सूर्योदय के समय जमींदार गंगाधर राव की मोटर वेंकम्मा के घर के सामने आ खड़ी हुई।

राम को सफेद वस्त्र पहनाकर शांतम्मा बाहर ले आयी।

मोटर को देखते ही राम उत्साह से हाथ बढ़ाकर आगे बढ़ा और खिल-खिलाकर हँस दिया। राम के इस असीम आनन्द को देखकर शांतम्मा की आंखों में आनन्द के आंसू चमक उठे।

गंगाधर राव ने गाड़ी से उतरकर हाथ बढ़ाये। एक ही छलांग में राम उनके हाथों में पहुंच गया।

लाठी के सहारे द्वार पर खड़ी वेंकम्मा ने एक फीकी हँसी हँसी। अपने आंसुओं को जब्त करते शांतम्मा भी मुस्करा उठी, उसके हाथ

यद्यपि राम को अपनी गोद में लेने के लिए छटपटा रहे थे !

"मैं नहीं आता !" ये शब्द कहते राम गाड़ी में जा बैठा।

चौखट पकड़े गाड़ी को देखता रवि हँसते हुए बोल उठा, "लाम !"

राम ने रवि की ओर देख सिर हिलाकर कहा, "आओ !"

जमींदार गंगाधर राव शांतम्मा से कुछ कहने के विचार से उसकी ओर देख रहे थे, पर शांतम्मा अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने हृदय के टुकड़े को जी भरकर देखने में मग्न थी।

"बहन !"

शांतम्मा ने गंगाधर राव की ओर देखा।

"मेरी छोटी-सी प्रार्थना है ! अपनी प्रसन्नता के लिए ये एक हजार रुपये ले लो।" जमींदार यह कहने में सकुचा रहे थे।

"मैं अपनी संतान को बेचनेवाली नहीं हूं। अगर आपका यही उद्देश्य है तो मेरे बच्चे को यहीं छोड़कर चले जाइए !" शांतम्मा के स्वर में रोष भरा हुआ था। वास्तव में उसका मन अशांत था। उस अवस्था में किस मां का दिल विकल न होगा !

"अच्छी बात है ! आपको कष्ट होता हो तो मैं नहीं दूंगा।" इन शब्दों के साथ गंगाधर राव गाड़ी में जा बैठे। वेंकम्मा की ओर देखते हुए बोले, "वेंकम्माजी, आपके इस उपकार को मैं कभी नहीं भूल सकता।" जमींदार ने गाड़ी चालू करते हुए कहा।

"यह सब भगवान की कृपा है।" वेंकम्मा ने आकाश की ओर हाथ उठाकर उत्तर दिया।

राव बहादुर का परिवार छत पर खड़े होकर विनोदपूर्वक यह दृश्य देख रहा था। अड़ोस-पड़ोस की महिलाएं द्वार पर खड़ी राम के भाग्य की प्रशसा कर रही थीं।

गाड़ी रवाना हुई।

"राम !" शांतम्मा ने विकल होकर पुकारा। पर राम गाड़ी की चाल पर अपना ध्यान केंद्रित कर चुका था। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

गाड़ी धूल उड़ाती चली गई। शांतम्मा उस धूल के बादलों को देखती न जाने कबतक खड़ी रही। फिर वेंकम्मा की पुकार सुनकर आंसू

पोंछते हुए भीतर चली गई।

गंगाधरराव ने वेंकम्मा से ये जो शब्द कहे थे कि मैं आपके इस उपकार को कभी भूल नहीं सकता, उसका एक विशेष अर्थ था। छः वर्ष से गंगाधर राव एक गुणवान बालक को गोद लेने का जो प्रयत्न कर रहे थे, वह अनायास आज सफल हुआ। गंगाधरराव के इस उद्देश्य से परिचित कई रिश्तेदारों ने अपने बच्चों को गोद देने की इच्छा प्रकट करते पत्र भी लिखे थे। उनके रूबरू आकर समझाया भी था। गंगाधर राव जानते थे कि वे सब स्वार्थवश अपने पुत्रों को देने को तैयार हो रहे हैं, फिर भी सबके घर जा-जाकर उन्होंने बच्चों को देखा था, परन्तु उनमें एक भी उन्हें पसन्द न आया। इसका कारण गंगाधर राव का ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र से परिचित होना था। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि राम के मुख-मंडल पर जमींदार ने जो लक्षण देखे, उन्होंने उन्हें आकृष्ट किया। गंगाधर राव ने कभी सपने में भी यह न सोचा था कि वह किसी भी माता से उसके बच्चे को दत्त-पुत्र के रूप में स्वीकार करने की इच्छा प्रकट करेंगे तो वह इन्कार कर सकेगी। उनकी संपन्नता का परिचय एक ओर पंडितजी करा रहे थे, दूसरी ओर शांतम्मा के एक और पुत्र भी है, इस हालत में भी वह अपने पुत्र को गोद देने को तैयार नहीं हो रही। इस बात से जमींदार के अहं को थोड़ा धक्का अवश्य लगा, परन्तु जमींदार का सिद्धान्त था कि कार्य की पूर्ति के हेतु क्रोध पर नियंत्रण रखना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने मन पर नियंत्रण रखा। किन्तु उन्हें तो दत्त-पुत्र की मां के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना था। इसके विपरीत वेंकम्मा के प्रति आभार प्रदर्शित करने में उनका उद्देश्य यह था कि कार्य की सफलता में वेंकम्मा का हाथ रहा। शांतम्मा का व्यवहार जमींदार के मानस-पटल पर उपेक्षा का भाव अंकित कर गया।

बीस मील की दूरी पर स्थित गुंटूर पहुंचने में ज्यादा समय नहीं लगा। जमींदार के महल के सामने गाड़ी के रुकते ही नौकर-चाकर सतर्क होकर खड़े हो गये। उस दिन सारा महल इस तरह सजाया गया, मानों कोई बड़ा उत्सव मनाया जा रहा हो!

गंगाधर राव की पत्नी पार्वती मन्द हास करते गाड़ी के पास आयी।

"तुम्हारी मां यही है, बेटा!" गंगाधर राव ने पार्वती की ओर संकेत करते हुए राम से कहा।

"मां...!" अन्यमनस्क हो राम ने सशंक स्वर में कहा।

'मां' शब्द ने पार्वती के कानों में अमृत की वर्षा कर दी। ऐसे मधुर शब्द को सुनने की लालसा से वह कई वर्षों से प्रतीक्षा कर रही थी। उसका हृदय उछल पड़ा। आनन्द के आंसू उसकी आंखों में छलछला उठे। राम को गोद में लेकर पार्वती ने हृदय से लगाया। उस तन्मयता में उसके नेत्र निमीलित हो गये। थोड़ी देर तक वह उस आनन्द से विभोर होकर सबकुछ भूल बैठी। उसका वात्सल्य सागर हिलोरें लेने लगा। मां और पुत्र के स्नेह-मिलन में गंगाधर राव ने ऐसी उपलब्धि पायी, जिसकी कामना चिरकाल से उनके हृदय में पोषित हो रही थी। आखिर अपनेको संभालकर गंगाधर राव गाड़ी से उतरे। नजर उतारे जाने के बाद पार्वती और गंगाधर राव राम की उंगली पकड़े उसे महल के भीतर ले गये।

६ ||

अपने पुत्र को दत्तक देने के बाद दो दिन तक शांतम्मा ने खाने का नाम तक नहीं लिया। रवि जबतब 'राम' का नाम लेता रहा। वह कभी रो पड़ता था। यह हालत देख वेंकम्मा मन-ही-मन घबरा गई। जिस क्षण वेंकम्मा के मन में यह विचार आया कि माता-पुत्र के वियोग का कारण वही है, उसी क्षण से उसने अनुभव किया कि शांतम्मा के मन को स्वस्थ बनाने की जिम्मेदारी उसीकी है। इसीलिए तीसरे दिन सवेरे थकावट और खांसी के प्रकोप की परवा किये बिना वेंकम्मा शांतम्मा की चारपाई पर जा बैठी।

"शांता !" वेंकम्मा ने स्नेहपूर्ण स्वर में पुकारा।

शांतम्मा दीवार की ओर अपलक नेत्रों से देखती चुप रही।

"तुम्हें मेरी कसम है, चारपाई से उठो !" ये शब्द कहते वेंकम्मा के नेत्र सजल हो उठे।

शांतम्मा ने वेंकम्मा की ओर देखा। वेंकम्मा का चेहरा मलिन था।

"फूफी !" शांतम्मा ने शुष्कता से कहा।

शांतम्मा का मौन भंग देखकर वेंकम्मा का चेहरा खिल उठा। उत्साह में आकर उसने पूछा, "क्या है, बेटी ?"

"आपने जो काम किया, क्या वह अच्छा कहा जा सकता है ?"

"तुम मां हो, इससे हो सकता है तुमको अच्छा मालूम न होता हो, किन्तु कोई भी इस काम को बुरा तो नहीं कह सकता !" वेंकम्मा कुछ और कहना चाहती थी, पर खांसी ने उसे रोक दिया।

"मैं अपने देवर को क्या जवाब दूंगी ?"

"तुम्हें जवाब देने की जरूरत ही क्या है ?"

शांतम्मा का शरीर शिथिल था, फिर भी कोशिश करके वह चारपाई पर उठ बैठी।

"तुम नहीं जानतीं, फूफी ! न मालूम वह किस लोक में हैं ! उन्हें राम बड़ा प्यारा था। जिन्दगी की आखिरी घड़ियों में भी उन्होंने अपने छोटे भाई को बुला कर कहा था, 'बच्चों की जिम्मेदारी तुमको सौंपकर जा रहा हूं। इन बच्चों को एक-दूसरे से अलग करोगी तो परलोक में भी मेरी आत्मा को शांति न मिलगी।' देवर ने भी उन्हें आश्वासन दिया था कि ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

शांतम्मा अपने उमड़ते दुःख को रोक न पाई। आंचल में मुंह छिपा कर फूट-फूट कर रोने लगी।

"शांता, अगर मुझे मालूम होता कि मेरी इस करनी से तुमको इतना दुख होगा, तो मैं कभी ऐसा न करती, बेटी !" वेंकम्मा ने पश्चाताप के स्वर में कहा।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं।

"इस भूल के लिए कोई मुझे सजा दे तो मैं बड़ी खुशी से उसे भोग लूंगी, बेटी ! ईश्वर को भी मैं ही जवाब दूंगी। मैंने जो पाप किया, वही काफी है। तुम उपवास करते हुए मुझ पर और पाप का बोझ न डालो, बेटी। मैं सहन नहीं कर पाऊंगी !" वेंकम्मा ने दुःख के साथ कहा।

वेंकम्मा के चेहरे पर शांतम्मा ने विषाद का मूर्त रूप देखा। वह अकेले भारी-से-भारी व्यथा को चुपचाप सहन कर सकती है, लेकिन वेंकम्मा की आंखों में आंसू नहीं देख सकती। उन आंसुओं ने वेंकम्मा के मानसिक क्षोभ को पहचानने में मदद दी।

शांतम्मा धीरे से उठ खड़ी हुई। वेंकम्मा भी लाठी की मदद से उनके पीछे रसोई में गई।

कुछ लोग दूसरे व्यक्तियों के मन को समझे बिना, इस ख्याल से अपनी सलाह को उचित मानते हैं कि उन्होंने दूसरों को भलीभांति समझ लिया है और उन्हें उत्तम मार्ग बताकर जबर्दस्ती दूसरों को उस रास्ते पर चलने को विवश करते हैं। परन्तु आचरण में वह मार्ग कैसा दुखदायी तथा कांटों से भरा हुआ है, यह बात तब समझते हैं, जब उस पर चलनेवालों की पीड़ा का अनुभव वे स्वयं करते हैं। ऐसी हालत में भी झूठे स्वाभिमान के पीछे पागल होकर अपनी भूल को बहुत से लोग स्वीकार नहीं करते। परन्तु वेंकम्मा जैसे सहृदय प्राणी वास्तविकता को स्वीकार कर पश्चात्ताप कर सकते हैं। किन्तु उस पश्चात्ताप का फल वही होता है, जो 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत', वाली कहावत सिद्ध करती है।

इस विषादपूर्ण पुत्र-वियोग का आघात शांतम्मा के हृदय को विदीर्ण कर गया, पर महीने भर बाद ही धीरे-धीरे वह घाव भरने लगा। अब शांतम्मा रवि में राम को देखकर तृप्ति का अनुभव करने लगी।

शाम का समय था। रवि को बगल में बिठाये शांतम्मा चावल में से कंकड़ बीन रही थी। पैरों की आहट पाकर उसने सिर उठाकर देखा।

चन्द्रय्या सामने आकर खड़ा हो गया।

चन्द्रय्या को देखते ही शांतम्मा का कलेजा धक्-धक् करने लगा। मगर उस घबराहट को चेहरे पर प्रकट किये बिना धीरे उठी। आंगन में आराम-कुर्सी डाल दी। चन्द्रय्या उस पर बैठ गया। शांतम्मा की घबराहट का कारण न केवल उसकी भूल थी, बल्कि चन्द्रय्या के चेहरे पर प्रकट होनेवाला क्रोधावेश भी था।

शांतम्मा ने भीतर से लोटे में पानी लाकर चन्द्रय्या के पास रख दिया। रवि चाचा को देखते ही दौड़कर उसकी गोद में नहीं गया। इन दो महीनों की अवधि में शायद उसकी आदत छूट गई थी।

चन्द्रय्या ने पहले ही रवि को देखा था, लेकिन उसने उसपर दृष्टि केन्द्रित नहीं की। वह शांतम्मा की ओर ही देख रहा था।

शांतम्मा ने कुशल-प्रश्न पूछने के ख्याल से चन्द्रय्या की ओर देखा, लेकिन फिर अपना सिर झुकाये वह कंकड़ बीनने में लग गई।

भाभी के प्रति यद्यपि चंद्रय्या के मन में अपार भक्ति है, फिर भी चन्द्रय्या से सारा परिवार डरता था। इसका कारण यह था कि चन्द्रय्या को सुख और दुःख को जल्दी हजम करने की आदत नहीं है। जो भी बात हो, बिना संकोच के कह बैठता है। यही बात शांतम्मा सोच रही थी।

"राम कहां है ?" चन्द्रय्या ने सीधा सवाल किया। उस सवाल में जो व्यथा व्यक्त हो रही थी, उसे भांपकर शांतम्मा जवाब न दे पायी। वह सिर नहीं उठा सकी।

"क्यों भाभीजी, आप ही से पूछता हूं ?"

शांतम्मा ने आंखें ऊंची करके देखा।

"दत्तक बनाकर भेज दिया न ?"

"मैं नहीं जानती।"

"बिना जाने बच्चे को पराये के हाथ कैसे सौंप दिया ?"

इस प्रश्न का शांतम्मा ने कोई जवाब नहीं दिया।

"रुपये हाथ लगे हैं क्या ?" यह सवाल धीरे से पूछा गया था, पर जितनी धीमी आवाज में शांतम्मा को वह बात सुनाई दी, उतनी तेजी

से कान के पर्दों को पार कर शांतम्मा के हृदय पर आघात कर गई। हठात् शांतम्मा ने अपने देवर की ओर देखा। उसकी आंखों में जो रक्त की रेखाएं खिच गईं, उनको चन्द्रय्या देख पाया।

"मैं जानता हूं कि विना फल के आप अपने पुत्र को परायों के हाथों में नहीं सौंप देंगी!"

शांतम्मा की सहनशीलता को जैसे किसीने ललकार दिया। वह बोली, "हां, पैसा लिया है।" शांतम्मा के कंठ में व्यथा, दुःख और लापरवाही ध्वनित हुई।

"होटल चलाने के लिए पूंजी की कमी थी क्या?" चन्द्रय्या ने व्यंग्यपूर्ण ढंग से पूछा।

"मुझे इसका उत्तर तुम्हें देने की कोई जरूरत नहीं है। अपने मरने के बाद यदि उनको जवाव देना पड़े तो वहीं पर दूंगी।"

ये शब्द कहते-कहते शांतम्मा दरवाजे की आड़ में चली गई।

"वेटा, उसका जवाब मैं देती हूं।"

चन्द्रय्या ने सिर उठाकर देखा। वेंकम्मा सामने खड़ी थी। उसने खांसते हुए जवाब दिया, "तुम जिस दिन यहां से चले गए, उसके ठीक दूसरे दिन ही शांतम्मा ने जोर देकर होटल बंद करवाया। जमींदार गंगाधर राव के हाथ बच्चे को मैंने सौंप दिया। उन्होंने 'राम' को गोद लेने की इच्छा मेरे सामने प्रकट की। अगर तुम शान्ता पर यह आरोप लगाओगे कि उसने बच्चे को पैसे में बेच दिया है तो वह बड़ी भारी भूल होगी और उसका सारा पाप तुम्हारे सिर पर लगेगा।" अंतिम बात वेंकम्मा ने क्रोध में कही थी, इसलिए खांसी बड़े जोर से उठ खड़ी हुई। चन्द्रय्या ने इस बीच जो गहरी सांस ली, वह खांसी में खो गई।

खांसी के थमते ही वेंकम्मा ने अपनी बातों का सिलसिला जारी रखा "वेटा, मैं पूछती हूं कि राम का जमींदार होना क्या तुमको भाता नहीं? यदि हमने दे दिया और तुमको बुरा भी लगा तो तुम मेरी निंदा करो, लेकिन शांता की नहीं। वह उस दिन से आजतक बराबर रोती ही रही है कि तुम्हारे आने पर क्या उत्तर दे सकेगी!"

वेंकम्मा की बातों से चन्द्रय्या का क्रोध ठंडा पड़ गया। भाभी

ने होटल बंद कराया और राम को गोद देने पर मुझे जवाब देने में व्यथा का अनुभव करती है, ये बातें चन्द्रय्या के तपते हुए दिल पर फुहार का काम कर गईं और उसका मन शीतल हो गया।

"मेरा मतलब भाभी के दिल को दुखाना नहीं है, काकीजी ! लेकिन मैं राम को अपने पास ही रखना चाहता था। मैं उसे पालना चाहता था। लेकिन भाभी से डरकर मैं कभी पूछने की हिम्मत न कर सका। उल्टे, मेरे भाई ने दोनों बच्चों को अलग करने से मना कर दिया था।... ये सारी बातें भाभीजी जानती हैं। तुम्हीं बताओ, ये बातें जानते हुए भी भाभी ने ऐसा काम किया तो मुझे क्या दुःख न होगा ? वे तो इतना जानती ही हैं कि मेरे भैया के मरने पर भी देवर तो जिंदा है ! मैं समझ नहीं पाता कि मुझे बिना बताये ऐसा क्यों किया।"

चन्द्रय्या ने आराम कुर्सीपर से उठते हुए पुकारा, "भाभीजी !"

शांतम्मा सामने आ खड़ी हुई। चन्द्रय्या ने भांप लिया कि वह अपने आंसू पोंछ रही है !

"मुझे किसीने बताया कि आपने रुपये लेकर बच्चे को गोद दिया। सच ही तो है ! जैसे आपने कहा—लड़के के साथ मेरा संबंध ही क्या है ! जिस दिन मेरे भैया का देहांत हुआ, उसी दिन भाभी भी मुझसे दूर हो गईं।..." चन्द्रय्या का कंठ अवरुद्ध हो उठा। उसके मुंह से आगे बोल न फूटा !

शांतम्मा चकित होकर चन्द्रय्या के निकट आ खड़ी हुई।

चन्द्रय्या आरामकुर्सी पर लुढ़क पड़ा और उसने अपने हाथों से मुंह ढांप लिया।

"यह तुम क्या करते हो, चन्द्रय्या ?"

शांतम्मा के स्वर में स्नेह का सागर उमड़ रहा था।

पास में खड़े होकर इस दृश्य को देखनेवाला रवि फूट-फूटकर रोने लगा।

वेंकम्मा रवि को गोद में लिये पिछवाड़े चली गई। उस दिन शांतम्मा ने चन्द्रय्या में जो परिवर्तन देखा, उससे वह विस्मित हुई।

शांतम्मा के बुलाने पर चन्द्रय्या इंकार न कर सका और खाने के लिए पत्तल के सामने बैठ गया। चन्द्रय्या के भोजन समाप्त करने तक

शांतम्मा उसके सामने बैठी रही।

आज शांतम्मा ने भली भांति समझ लिया कि चन्द्रय्या के मन में उसके प्रति कैसा आदर और श्रद्धा का भाव है। यही स्नेह उसके हृदय में भी हिलोरें मार रहा था। भोजन समाप्त कर चन्द्रय्या ने हाथ धोये। शाल कंधे पर डालते हुए बोला, "भाभीजी, आज्ञा दीजिए। मैं जाता हूं।"

"थोड़ी देर ठहरकर जाओ! अभी-अभी तो खाना खाया है।"

"कोई बात नहीं, भाभी!" दो कदम बढ़ाकर चन्द्रय्या रुका, फिर बोला, "भाभीजी, आइंदा मैं आपको देखने नहीं आऊंगा! कोई कष्ट हो तो मुझे भूल न जाइये। मेरी कोई भूल हो तो क्षमा कर दीजिए!"

चन्द्रय्या तेजी से चला गया।

शांतम्मा मूर्तिवत खड़ी रह गई। चन्द्रय्या के अंतिम शब्दों ने उसकी तीव्र व्यथा को व्यक्त किया। वास्तव में शांतम्मा ही देवर से क्षमा मांगना चाहती थी। उस अवसर का चन्द्रय्या ने फायदा उठाया। उसने जो अपराध नहीं किया था, उसके लिए क्षमा मांगी और चला गया।

७ ||

दो वर्ष बीत गए। इस बीच चन्द्रय्या एक बार भी न आया। शांतम्मा के मन से यह विश्वास भी उठ गया कि चन्द्रय्या आकर कभी उनके सुख-दुःख को देखेगा।

वेंकम्मा की खांसी और थकावट बढ़ती गई। उसने चारपाई पकड़ ली। शांतम्मा उसकी सेवा करते हुए दिन काटने लगी, मगर भविष्य की कल्पना करके उसका शरीर कांप उठता था। रवि लड़खड़ाते चलने लगा था। राम की याद आती तो शांतम्मा के दिल में हलचल मच जाती। फिर भी कोई अज्ञात आशा उसके अंतराल में कौंध जाती।

एक दिन प्रातःकाल उठते ही शांतम्मा ने देखा, कोई अपरिचित

युवक बरामदे में बैठा हुआ है। उसने अनुमान लगाया कि सवेरे पांच बजे आनेवाली गाड़ी से शायद वह आया है।

वह युवक देखने में सभ्य प्रतीत हो रहा था। सामने दो सूटकेस और बिस्तरबंद पड़े थे। सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए वह आरामकुर्सी पर निश्चिंत बैठा था।

शांतम्मा को देखते ही उस युवक ने प्रश्न किया, "आप कौन हैं ?"

शांतम्मा ने उसकी ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखा। यह प्रश्न उसे पूछना था। उत्तर देने की उसकी इच्छा न हुई। वह सीधे वेंकम्मा के कमरे में गई।

वहां के दृश्य को देख शांतम्मा के आश्चर्य की सीमा न रही। वेंकम्मा की चारपाई के निकट एक चटाई पर कोई युवती गहरी नींद में सो रही थी।

"फूफी !" शांतम्मा ने धीरे-से पुकारा। चटाई पर लेटी युवती ने करवट बदलते हुए कहा, "लिखा-पढ़ी का काम जल्द पूरा कर दीजिए। बाद को आराम से सारी बातें हो सकती हैं।" शांतम्मा कुछ हटकर ध्यानपूर्वक देखने लगी।

सहसा हँसी की आवाज सुनकर शांतम्मा चौंक पड़ी।

"सपने में बड़बड़ा रही है। आप घबराइए नहीं, रात-भर रेल की यात्रा में नींद नहीं आई।"

बरामदे में बैठा वह युवक पीछे खड़े होकर ये शब्द बोल रहा था।

"आपने अपना परिचय नहीं दिया।" फिर उस युवक ने सवाल किया। शांतम्मा जवाब न दे पाई।

"रात को फाटक आपने ही बन्द किया ?" वह स्वर आक्षेपपूर्ण था।

शांतम्मा ने विचार किया। उसे लगा कि उसने भूल की थी। फाटक पर कुंडी चढ़ाये बिना दर्वाजे सटाकर लौट आई थी। वह उस समय अन्यमनस्क थी।

"कोई चोर-डाकू आ जाय तो क्या होगा ?" बात सही थी, लेकिन वह अपरिचित व्यक्ति इतनी स्वतंत्रता के साथ कैसे बात कर रहा है,

शांतम्मा के मन में झूंझलाहट थी।

"फूफी !" इस बार शांतम्मा ने वेंकम्मा को थपकियां देकर जगाया। वेंकम्मा चौंककर जाग पड़ी। पर उठे विना, घवड़ाये स्वर में पूछा, "क्या वात है, वेटी !"

"मां !" शब्द सुनकर वेंकम्मा ने दर्वाजे की ओर देखा, लेकिन उसने कोई प्रश्न नहीं किया। उसके चेहरे पर विरक्ति का भाव शांतम्मा को दिखाई दिया।

"चार बजे की गाड़ी से आये हैं। तुम्हारी तबीयत कैसी है ?" ये शब्द कहते हुए युवक चारपाई के निकट आया।

"ओह ! काकी की जरूरत आज आ पड़ी है !" वेंकम्मा ने अपना सिर मोड़ लिया।

"क्या करूं, काकीजी ?...एक महीने से कोशिश करता रहा, अब जाकर छुट्टी मिली। नौकरी का मामला ही कुछ ऐसा है।" इसके वाद वेंकम्मा के पैरों के पास बैठते हुए उसने पूछा, "काकीजी, ये कौन हैं ?"

वार-वार यह प्रश्न पूछने में कोई कारण हो सकता है। शांतम्मा के मन में विचार आया, लेकिन यह बात उसे बड़ी बुरी लगी कि जो आदमी छुट्टी लेकर आया है, उसे और लोगों का परिचय पाने की ऐसी उतावली क्यों है ?

"मेरी भनजी है।" वेंकम्मा ने उत्तर दिया।

"अरे ! रामय्या चौधरी की बहू ?"

वेंकम्मा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

"मैंने शादी के दिन देखा था। ओह ! देखते-देखते बारह साल बीत गये। उस वक्त मैं मैट्रिक में था। वह कुशल हैं न ?" जंभाइयां लेते हुए वह ताकता रहा।

अगर यह सवाल और कोई व्यक्ति किसी दूसरे से करता तो शांतम्मा को जरूर हँसी आ जाती।

हिन्दू नारी को देखकर भी वह कन्या है या विधवा, न पहचानने वाला अगर कोई हिन्दू है तो औरत जरूर हँस पड़ेगी। फिर भी यह जानते हुए कि रामय्या चौधरी की पत्नी विधर्मी नहीं हो सकती, यह

मूर्खतापूर्ण सवाल करने में उसका भोलापन प्रकट नहीं होता, बल्कि यह उसकी ज्यादती का परिचय देता है।

"अरी, सुनो तो।" नीचे देखते हुए युवक ने जोर से पुकारा।

"उफ, मेरी जान ले रहे हो!...यह कैसा शोरगुल मचा रखा है!" युवती करवट बदलकर फिर लेट गई।

"अरे, यह हमारा घर नहीं है, याद रखो!" होंठ काटते हुए युवक बोला।

"चाहे किसीका भी घर क्यों न हो, मेरी थकावट जबतक दूर न होगी, तबतक मुझे सोना ही पड़ेगा।" युवती पैर मोड़कर लेटी रही। थोड़ी देर बाद संभलकर बोली, "क्या कहा? यह हमारा घर नहीं है?" कहते-कहते उठकर चटाई पर बैठ गई और बोली, "पराया घर बनाने के ख्याल से ही आजतक हाथ-पर-हाथ धरे बैठे थे।" वह उठ खड़ी हुई और वेंकम्मा की ओर देखकर बोली, "मामीजी, सुनती हो न! एक महीने से झगड़ती रही तो रवाना हुए। क्या अपनी मां और काकी कभी अलग हो सकती हैं? थोड़ी अक्ल होनी चाहिए।" अपने पति की तरफ क्रोधभरी दृष्टि दौड़ाते हुए वह युवती पुनः बोली, "आपकी पढ़ाई और उन्नति का कारण कौन हैं? बताइये। यह बात भूल जायंगे तो आपको खाना तक नहीं मिलेगा।"

"अरी, चुप रह!" वेंकम्मा ने धीरे-से समझाया। लगा, उसकी आंखों में आंसू डबडबा रहे हैं। "मां!" युवक ने पुकारा। शांतम्मा वहां रह न पाई, अपने कमरे में चली गई।

मुसीबत के समय वेंकम्मा की मदद करने के लिए ये दंपति आये हुए हैं। वे वेंकम्मा के रिश्तेदार हैं।

वेंकम्मा ने अपने देवर के लड़के रमणय्या को बचपन से सगे पुत्र से बढ़कर पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया था। उसकी शादी भी की थी। लेकिन जैसे पंखों के उगते ही कोयल का बच्चा कौए के घोंसले से उड़ जाता है, वैसे ही रमणय्या अपने परिवार में जा मिला। फिलहाल नेल्लूर में डाकखाने में क्लर्की करता है और पत्नी के साथ वहीं रह रहा है।

नहीं कह सकते कि रमणय्या के दिल में कहीं वेंकम्मा के प्रति कृतज्ञता का भाव नहीं है, लेकिन यह खबर भी उसके आगमन का कारण हो सकता है कि वेंकम्मा ने होटल चलाकर दस हजार नकद कमा रखे हैं और अब वह थोड़े दिन के लिए ही दुनिया की मेहमान है।

रमणय्या की पत्नी का नाम कांतम्मा है। अपने पति से बढ़कर वाचाल है। पति की भूलों को तत्काल सुधारने की कुशलता भी उसमें है। शांतम्मा नौकरानी की मदद से रसोई के काम में जुटी थी। नाश्ता-पानी के बाद वेंकम्मा के कमरे में गई और पूछा, "फूफीजी, तरकारी आज क्या बनाऊं ?"

वेंकम्मा कुछ सोच रही थी।

कांतम्मा झट बोल उठी, "मामीजी, क्या काली मुर्गी अंडे देती है ?"

वेंकम्मा मुर्गी से कांतम्मा का ध्यान हटाने के ख्याल से बोली, "अपना सिर देती है। चार अंडे दिये, तो बस, फिर महीना भर नहीं।" इसपर रमणय्या रस लेते हुए बोल पड़ा, "तब तो उसे पालने से ही क्या फायदा ? आज मुर्गी का पुलाव खायंगे।"

कांतम्मा ने हँसकर जवाब दिया, "जरा शर्म करो ! कहीं रिश्तेदार बनकर आये हुए लोग भी मांगकर खाते हैं ?"

"दूसरी जगह की बात अलग है। यहां लाज-शर्म की क्या बात है ! बस समझो, यह घर अपना है, मेरा है ! तुम न चाहो तो न खाओ।" रमणय्या मुंह बनाकर अपनी होशियारी पर आप खुश होने लगा।

उसके चेहरे की बनावट देखकर कांतम्मा को फिर हँसी आ गई। शांतम्मा को यह मज़ाक अखरता रहा। उसने जोर देकर पूछा, "बताओ, क्या बनाऊं ?"

उस मुर्गी पर वेंकम्मा की ममता है, यह बात वह भूल गई। अन्यमनस्क हो बोल पड़ी, "अच्छा, मुर्गी का पुलाव बनाओ।"

शांतम्मा लौटने को हुई।

"दीदी ! क्या मुझे पराये घर की समझती हो।" कांतम्मा पूछ बैठी।

इस अकारण निन्दा पर शांतम्मा चकित होकर बोली, "नहीं, बहन, भला मैं क्यों पराया समझूंगी ?"

"ज़रा दूकान तक हो आता हूं ! वक्त नहीं कटता !" रमणय्या अंगड़ाई लेते उठ खड़ा हुआ। वेंकम्मा ने सिर हिलाकर अनुमति दी।

कांतम्मा पहले ही वहां से चली गई।

रमणय्या आंगन पार कर जाने ही वाला था कि पीछे से पुकार सुनकर रुक गया।

"ज़रा सुनो !"

रमणय्या पत्नी के पास आया।

"मैंने जो कहा था, कुछ किया ?" कांतम्मा के कंठ मे कंपन था।

"जा तो रहा हूं !" फिर भोला चेहरा बनाकर बोला, "काकीजी से पूछना नहीं है क्या ?"

"ओफ़ ! कैसी अक्ल दे रखी है तुम्हें ईश्वर ने !" कांतम्मा ने नाक-भौं सिकोड़ ली।

रमणय्या के चेहरे पर अपमान के चिह्न झलक रहे थे।

कांतम्मा ने पति के कान में कहा, "बिना पूछे लाना उत्तम होगा ! पूछने पर वह थोड़े ही मानेगी ?"

"हां-हां ! ठीक कहती हो।" रमणय्या ने सिर हिलाकर कहा।

"अच्छा, तब हो आओ।" पत्नी ने उसे सचेत किया।

रमणय्या बड़े-बड़े डग भरता हुआ चला गया।

रसोई के काम में निमग्न शांतम्मा के पास पहुंचकर कांतम्मा ने छेड़ा, "दीदीजी, मामी कितनी कंजूस हैं !"

"कौन ?" शांतम्मा ने आश्चर्यपूर्ण स्वर में पूछा।

"दीदी, अभिनय क्यों करती हो ? और है ही कौन ? मामी है न?"

शांतम्मा चकित थी। बड़ी उम्रवाली वेंकम्मा को कुछ कहना उसे अच्छा न लगा।

"तुम नहीं जानतीं, दीदी ! हमारी शादी भी इसाने की है। उसे इस बात की चिंता भी नहीं कि उसका बेटा मरा है या जिन्दा। भगवान

जानते हैं कि जब इनकी नौकरी नहीं लगी, तब हमने कैसी मुसीबतें झेलीं ! उन मुसीबतों के समय हमने लाज-शर्म छोड़कर दस रुपये मांगे तो भी हमारी मदद नहीं की। ...इसकी कमाई भाड़ में जाय। क्या मरते समय अपने साथ ले जायगी ?"...कांतम्मा प्याज काटना छोड़कर आंचल से आंखें पोंछने लगी।

"उस बेचारी की निन्दा क्यों करती हो ?" शांतम्मा ने वेंकम्मा का समर्थन किया।

"हां-हां, थोड़ी-बहुत वह तुम्हारी मदद करती है, इसलिए वह तुमको भली लगती है ! उसकी मैंने एक कौड़ी भी नहीं ली ! उसके बड़प्पन से मुझे क्या लेना-देना !" कांतम्मा ने उलहना दिया।

यह बात शांतम्मा को बड़ी बुरी लगी। उसने बर्तन में चावल डालते हुए कांतम्मा की ओर देखा। कांतम्मा ने न मालूम क्या सोचा और नाक सिकोड़ कर वहां से चल दी।

दोपहर के बारह बजे रमणय्या एक डाक्टर को साथ लेकर घर लौटा। तबतक वेंकम्मा खा-पीकर अपने कमरे में लेटी हुई थी।

"अरी, सुनो तो !" देहलीज़ पर कदम रखते रमणय्या ने पत्नी को पुकारा।

बगल के कमरे से बाहर आकर कांतम्मा ने देखा, डाक्टर दरवाजे के बाहर खड़ा था।

"क्या देखते हो ? कुर्सी तो डाल दो।" यह कहते हुए कमरे में से कुर्सी लाकर कांतम्मा ने द्वार पर रखी। हॉल में कुर्सी डालते हुए रमणय्या ने कहा, "अंदर आइये।"

डाक्टर आकर कुर्सी पर बैठ गया।

कांतम्मा तत्काल वेंकम्मा के कमरे में जा पहुंची। उसके पीछे रमणय्या भी आ गया।

"मामीजी !" कांतम्मा ने पुकारा। निद्रा में निमग्न वेंकम्मा ने आवाज सुनकर आंखें खोलीं।

"आपका बेटा डाक्टर को बुला लाया है।"

"डाक्टर ?" वेंकम्मा ने आश्चर्य से पूछा। वह धीरे-से खाट पर

उठ बैठी।

"हां, काकीजी! तुम्हारी हालत देखते मैं चुप कैसे बैठा रह सकता हूं?" रमणय्या मृदुल स्वर में बोला।

पिछवाड़े से आकर तबतक शांतम्मा हॉल के बराबरवाले कमरे में खड़ी हो गई।

"उठिये तो, डाक्टर हॉल में बैठे हैं।"

वेंकम्मा कुछ कहने को हुई, पर खांसी ने उसे रोक दिया।

"यह भी कैसी बीमारी है!...कैसी बला है! इस घर का खाते रहे हैं, पर आजतक इस घरवालों की कोई खबर नहीं लेता।" कांतम्मा की यह बात शांतम्मा के कानों में नहीं पड़ी।

कांतम्मा और उसके पति ने वेंकम्मा को सहारा दिया और डाक्टर के पास ले गये।

"दीदी, देखती क्या हो? वह तिपाई ज़रा ला दो।" कांतम्मा के स्वर में कठोरता थी।

शांतम्मा ने तिपाई लाकर रख दी। वेंकम्मा डाक्टर के सामने उस तिपाई पर बैठ गई।

"कैसी बीमारी है, नानी?" डाक्टर ने पूछा।

"खांसी...थकावट।" वेंकम्मा हांफते हुए बोली।

डाक्टर ने नली (स्टेथस्कोप) से वेंकम्मा की जांच की। उसने एक बार गहरी सांस ली। सब डाक्टर के चेहरे की ओर ताकते रह गए।

"रमणय्या, आपको मेरे साथ अस्पताल तक चलना होगा!" कहकर डाक्टर बरामदे में आया। रमणय्या उसके पीछे-पीछे चला।

"डाक्टर को बुला लाने को किसने कहा था?" वेंकम्मा ने कांतम्मा की ओर संदेहभरी दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"वह ही लाये हैं।"

"ये डाक्टर तो सब दगाबाज हैं। कसकर रुपये ऐंठ लेते हैं, पर बीमारी दूर होने का नाम नहीं लेती!" वेंकम्मा कमर पर हाथ रखे धीरे-से उठ खड़ी हुई।

कांतम्मा मुस्करा दी, पर कोई जवाब नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद शांतम्मा की ओर देखते हुए कहा, "दीदी, मामी को पैसे की चिंता है! डाक्टरों पर उनका विश्वास नहीं है। देखती हो न?"

शांतम्मा को कोई उत्तर न सूझा। बस मंद हास कर रह गई।

वेंकम्मा की त्यौरियां बदल गईं—"पैसे की चिंता...हूं...चिंता किसे नहीं है? जहां गुड़ है, वहीं चींटे जमा होते हैं?" यह व्यंग्य-बाण छोड़ वेंकम्मा अपने कमरे में चली गई।

कांतम्मा के चेहरे का रंग बदलते देर न लगी। उसके दिल पर यह जो आघात लगा, वह आंखों में प्रकट हो गया।

"अब कोई चिंता नहीं...मेरी काकी महीने-भर में चंगी हो जायंगी! अरे...काकी कहां है?" इन शब्दों के साथ रमणय्या हॉल में पहुंचा।

अपनी पत्नी के चेहरे को देखकर वह चकित हो खड़ा रह गया! "तुम डाक्टर को क्यों लिवा लाये?" क्रोध-भरी दृष्टि से रमणय्या को देखते हुए कांतम्मा ने पूछा।

नाक-भौंह सिकोड़कर रमणय्या बोला, "लाया तो क्या हुआ?"

"कहती हैं—उनके पास गुड़ है, और चींटे आकर उसे खाने को यहां जमा हो गये हैं!"

ये शब्द कहते-कहते कांतम्मा के नेत्र सजल हो उठे। देहलीज पर खड़ी शांतम्मा उसके पास आकर बोली, "वह तो हमारी मां जैसी हैं। उनके कहने का हमें बुरा नहीं मानना चाहिए, बहन!" शांतम्मा की बातें पूरी भी न हो पाईं थीं कि अपने कंधे पर से शांतम्मा के हाथ को झटककर कांतम्मा तुनककर बोली, "हूं! जिनको उनसे कुछ लेना-देना है, वे उनकी बातों का भले ही बुरा न मानें, लेकिन हमें उनसे क्या लेना-देना है! उनके आश्रय में पड़े रहकर, उनकी दया का पात्र बनकर, हम यहांपर खाने नहीं आये हैं।" इसके बाद जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए कांतम्मा रसोई की ओर चली गई।

शांतम्मा उन बातों पर चकित हो जड़वत खड़ी देखती रह गई।

वेंकम्मा ने यह नहीं सोचा था कि उसने जो पत्थर फेंका, वह कांतम्मा के दिल को घायल करता हुआ शांतम्मा पर आघात कर बैठेगा। ये बातें कमरे में बैठी वेंकम्मा ने सुन लीं। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर वह खाट पर लुढ़क पड़ी।

रात में न मालूम पति-पत्नी ने क्या विचार किया, सवेरा होते ही अपने गांव जाने के लिए वे तैयार हो गए।

उस दंपति की इस अचानक यात्रा से शांतम्मा को दुःख हुआ, लेकिन यह सोचकर वह मौन रह गई कि सच्चे दिल से कुछ कहने पर भी न मालूम उसका क्या-क्या अर्थ लगाया जायगा। इसलिए उसने कांतम्मा को रोकने का साहस न किया। वह सीधे वेंकम्मा के कमरे में गई। वेंकम्मा तभी जाग कर चारपाई पर बैठी थी।

"फूफी! वे दोनों जाने के लिए तैयार हो रहे हैं?" शांतम्मा ने नम्र भाव से कहा।

"उनका जाना ही अच्छा है, बेटी!" वेंकम्मा ने उसी स्वर में उत्तर दिया।

शांतम्मा ने आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखा। फिर विनयपूर्वक बोली, "ऐसा कहना ठीक नहीं है, फूफी!"

"तुम नहीं जानतीं, बेटी! सच्ची बात सदा बुरी लगती है। जो लोग कभी मुझे छोड़कर चले गये थे, आज यहां आये हैं तो इसका क्या मतलब हो सकता है?" वेंकम्मा ने शांतम्मा की ओर देखा। शांतम्मा ने कोई उत्तर न दिया। वह ध्यान से वेंकम्मा की बातें सुन रही थी। वेंकम्मा ने फिर मौन भंग करते हुए कहा, "बैंक में जो दस हजार रुपये जमा हैं और मेरा यह जो मकान है, इन्हें हड़पने के लिए अगर वे मुझे अकाल में ही यम का मेहमान बनावें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।" ये शब्द कहते वेंकम्मा की आंखों में आंसू आ गए।

इन बातों ने शांतम्मा के मन में एक विचित्र भय का संचार कर दिया। वेंकम्मा की इस बुद्धि पर विस्मित हो शांतम्मा ताकती रह गई।

घर में किसीसे कहे बिना पति-पत्नी ड्योढ़ी पार करके बाहर

गये। घोड़ागाड़ी गली में खड़ी थी। वेंकम्मा धीरे-से चलकर दरवाजे पर आई और उस दृश्य को देखती रही। कुछ सोचते हुए उसने एक कदम आगे बढ़ाना चाहा, लेकिन पैर फिसलने से नीचे गिर पड़ी।

गाड़ी पर सवार होनेवाले रमणय्या ने घूमकर देखा। वह "मां," कहकर घबड़ाता हुआ वहां पहुंचा। कांतम्मा भी गाड़ी से उतर आई। वेंकम्मा के स्थूल शरीर को तीनों ने मिलकर उठाया और कमरे में लाकर चारपाई पर लिटा दिया।

फिर पति-पत्नी ने यात्रा स्थगित कर दी। घोड़ागाड़ी को वापस भेज दिया।

दिन-भर वेंकम्मा चारपाई से उठी नहीं। रमणय्या ने फिर डाक्टर को बुलाकर दिखाया।

डाक्टर ने रोगी की जांच करके बताया कि पक्षाघात का असर हुआ है।

रमणय्या का खुला हुआ मुंह खुला ही रह गया। डाक्टर उसे देखकर यह समझ न पाया कि ऐसा आश्चर्य के कारण या आनन्द या चिंता के कारण हुआ।

कांतम्मा ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?"

"डाक्टर लकवा बताते हैं।" रमणय्या ने कहा।

"लकवा ! माई री!" बड़ी-बड़ी आंखें बनाकर जोर से कांतम्मा ने कहा।

शांतम्मा उनकी बातें सुनकर आंचल से आंसू पोंछते अन्दर चली गई।

दूसरे दिन वेंकम्मा की वाणी मूक हो गई।

कांतम्मा घर की मालकिन बन गई। नौकरानी को काम से हटा दिया। घर का सारा काम शांतम्मा पर आ गया।

काम से शांतम्मा को कोई दुःख न हुआ, पर वेंकम्मा की हालत पर उसे बहुत ही व्यथा थी।

एक दिन शांतम्मा वेंकम्मा के पैर दबा रही थी। वेंकम्मा शांतम्मा की ओर देखते आंसू बहा रही थी।

रमणय्या ने आकर यह दृश्य देखा और कहा, "काकीजी, यह तुम क्या करती हो ? डाक्टर कहते हैं कि जल्दी ठीक हो जाओगी !" उसने हिम्मत बंधायी। वेंकम्मा जानती थी कि उसके दुःख का कारण बीमारी नहीं, फिर भी वह अपनी बात कहने में असमर्थ थी। यही उसकी चिंता का कारण था।

वेंकम्मा ने रमणय्या को बैठ जाने का इशारा किया। वह चारपाई के पास जमीन पर लुढ़क पड़ा। कांतम्मा भी ठीक समय पर वहां आ पहुंची। वेंकम्मा ने दस उंगलियां दिखाकर पांच उंगलियां शांतम्मा को देने का संकेत किया।

रमणय्या ने अपनी पत्नी के चेहरे को देखा। कांतम्मा वेंकम्मा के निकट पहुंचकर बोली, "मामीजी, जैसी आपकी इच्छा है, वैसा ही करेंगे।"

अश्रुपूर्ण नयनों में, मूक संकेत से, वेंकम्मा ने कांतम्मा से प्रार्थना की कि शांतम्मा अनाथ है, उसकी रक्षा का भार उन लोगों पर ही है !

शांतम्मा के दुःख का ठिकाना न था। उसपर वेंकम्मा की जो अपार ममता है, और उसके हृदय में दया का जो सागर उमड़ रहा है, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हुए शांतम्मा ने सिर झुका लिया। उमड़नेवाले दुःख की बाढ़ को रोकने का प्रयास करते हुए शांतम्मा ने आंचल का कोना दांतों से दबा लिया, लेकिन वह अपने दुःख को रोक न पाई, वहां से उठकर अपने कमरे में चली गई।

पैर फिसलने के एक माह बाद ही वेंकम्मा परलोकवासिनी हो गई। शांतम्मा जनती थी कि कांतम्मा ने वेंकम्मा के सामने जो वचन्न दिया था, उसे वह नहीं निभायेगी।

क्रांतम्मा शांतम्मा के प्रति जो अनादर का भाव दिखाती थी, उस पर वह मन-ही-मन व्यथित हो रही थी। लेकिन श्राद्ध-कर्म के पूरा होने तक वह सबकुछ सहती रही।

श्राद्ध-कर्म के पूरा होने के दूसरे ही दिन कांतम्मा और रमणय्या से विदा लेकर रवि को गोद में लिये शरीर के कपड़ों के साथ शांतम्मा पूरब की ओर रवाना हो गई।

रमणय्या और कांतम्मा शांतम्मा को जाते देखते हुए उसकी काय-रता और अपनी अक्लमंदी पर जोर से हँस पड़े ।

८ ||

सूर्यास्त होने तक शांतम्मा रवि के साथ गुंटूर पहुंच गई, लेकिन रात के दस वजे से पहले वह जमींदार के भवन तक न पहुंच पाई ।

शहर के बाहर एक विशाल मैदान में वने उस भवन का पता लगाने में शांतम्मा को काफी समय लगा । किसीने भी सही रास्ता नहीं वताया । नतीजा यह हुआ कि सारा शहर छानते-छानते वहां तक पहुंचने देरी हो गई ।

शांतम्मा ने जव अपनी फूफी का घर छोड़ा, उस समय उसके पास में केवल डेढ़ रुपया था । गाड़ी के किराये में वह खर्च हो गया । इसलिए वह कुछ खा भी न सकी ।

भूख से परेशान रवि का चेहरा देखकर शांतम्मा दुःखी हो उठी । मां की हालत देखकर रवि ने उसे विशेष तंग तो नहीं किया, लेकिन संध्या होने पर एक-दो बार उसने खाना मांगा ।

"वेटा, अभी हम भाई के घर पहुंच रहे हैं! वहीं खा लेना ।" शांतम्मा ने रवि को सांत्वना दी ।

रवि की समझ में न आया कि भाई कौन है, और उसका घर क्या है । पर किसी विचित्र जगह को देखने के कुतूहल से वह अपनी भूख को भूल गया ।

एक विशाल महल के फाटक के सामने शांतम्मा बड़ी देर तक खड़ी रही । महल में बिजली की बत्तियां जगमगा रही थीं । लोगों का आवागमन न था । इसलिए शांतम्मा ने सोचा कि सब लोग सोते होंगे ।

पर उससे रहा न गया । उसने अपने पुत्र को जल्दी ही देखने के ख्याल से फाटक को ढकेला । फाटक भारी आवाज करके खुलने लगा ।

"कौन है ?" किसीका कर्कश कंठ सुनाई दिया।

पहरेदार ने फाटक के पास पहुंचकर डांटते हुए कहा, "कौन है ?"

"जमींदार साहब हैं ?" शांतम्मा ने पूछा।

"किसलिए ?"

"थोड़ा काम है, भैया !"

पहरेदार बुरी तरह हँस पड़ा। दिन-भर फ़ुरसत नहीं मिली। अब आई हो, जाओ। काम हो तो कल सुबह आ जाना।"

पहरेदार खुले हुए फाटक को बंद करने लगा।

"तेनाली से आई हूं। यहांतक पहुंचने-पहुंचते देरी हो गई।... ज़रा..."

शांतम्मा की बात पूरी भी न हो पाई कि पहरेदार ने गरजकर पूछा, "यह किसका घर समझती हो ?"

"गंगाधररावजी का।"

"ओह, नाम भी जानती हो ! हमारे जमींदार मामूली आदमियों की तरह जब चाहें तब हर किसीसे बात नहीं करते। जाओ !" पहरेदार घूम पड़ा।

"भैया, मेरी बात तो सुनो !" शांतम्मा के स्वर में दीनता भरी थी।

"तेरे में अक्ल नहीं है। होती तो एक बार कहने से मान जाती।" वह जोर से चिल्ला पड़ा।

पहरेदार की चिल्लाहट सुनकर रवि रोने लगा। उसे कंधे से लगाकर शांतम्मा फिर बोली, "बहुत जरूरी काम से आई हूं। सुबह से मेरे बच्चे ने खाना भी नहीं खाया है।"

पहरेदार बोला, "ओह, यह बात पहले ही कह देती !"

शांतम्मा ने व्यथा-भरी दृष्टि से उसे देखा।

"वेंकय्या, यह कौन है ?" जमींदार की विधवा बहन ने पहरेदार से पूछा।

पहरेदार ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। शांतम्मा ने उस ओर आशाभरी दृष्टि दौड़ाई !

"चिल्लाते क्यों हो ? थोड़ा खाना देकर भेज दो !" यह आदेश देकर जमींदार की बहन भीतर चली गई।

वेंकय्या ने सिर हिलाया, फिर शांतम्मा की ओर क्रोधभरी दृष्टि डालकर बोला, "वहां पर रहो, अन्दर न आना !"

पहरेदार खाना लेने भीतर चला गया।

असली सोने की अपेक्षा मुलम्मा चढ़ाया हुआ पीतल का टुकड़ा ज्यादा चमकता है। उस चमक में वह असली सोने को भी भुला देता है। भुलाता ही नहीं, वह अपनेको असली सोना मानकर इठलाता है, परन्तु थोड़े दिन बाद सोने का मुलम्मा जब घिस जाता है और उसका असली रंग प्रकट होने लगता है तब अपने अहंकार पर पछताते वह सबकी आंख बचाकर किसी कोने में पड़ा रहता है।

इसी भांति धनिकों के आश्रय में रहनेवाले, अपनी असली हालत को भूलकर बड़प्पन और दंभ प्रदर्शित करनेवाले ओछे व्यक्तियों की हालत हो जाती है !

पहरेदार एक पत्तल में खाना ले आया। फाटक खोल शांतम्मा के हाथों में थमाकर फाटक फिर बंद करने लगा।

"भैया, इस शहर में हमारी जान-पहचान का कोई नहीं है।"

"ठीक है, पर तुम यहांपर नहीं रह सकतीं, जाओ।" इतना कहकर पहरेदार ने फाटक बंद कर दिया और बत्ती बुझा दी।

शांतम्मा सड़क के किनारे जलती एक बत्ती के पास रवि को ले गई। उसे खाना खिलाया, पर वह स्वयं न खा सकी।

उस बत्ती के खंभे के पास रवि को लिये बैठी शांतम्मा ने उस महल की ओर देखा। दूसरी मंजिल की खिड़कियों से होकर बिजली की रोशनी सड़क पर पड़ रही थी। उसने कल्पना की कि उसका बड़ा बेटा मीठी नींद में सोता होगा। अगर उसे यह मालूम हो जाय कि जाड़े में आधी रात के समय उसकी मां उसके छोटे भाई के साथ सड़क पर बैठी है तो उसे कितना दुःख होगा !

"मां !" महल के ऊपर से पुकार सुनाई पड़ी। वह कंठ उसका परिचित था। वह राम की पुकार थी ! शांतम्मा रवि को गोद में लिये

प्रसन्नता के साथ उठ खड़ी हो गई।

"क्यों, वेटा !" एक दूसरा कंठ किसी नारी का सुनाई पड़ा। शांतम्मा खड़ी रहकर उस बातंचीत को सुनने लगी।

"तुम्हारे विना मैं नहीं लेटूंगा, मां ! मेरे पास ही लेट जाओ !"

"मां पास में न हो तो पल-भर भी नहीं सोता। अभी आई।" उस कंठ में खीज भरी थी।

उस सुनसान रात्रि में इस बातचीत को शांतम्मा स्पष्ट सुन पाई। इन दो वर्षों के भीतर राम अच्छा बोलने लगा है ! एक दूसरी मां को पा गया है। लेकिन न मालूम उसे असली मां की याद है या नहीं ! यही वह सोच रही थी। उसे लगा, अब वह भूल गया होगा। फिर भी उसने मन-ही-मन ईश्वर से यही कामना की—"भगवान, मेरा पुत्र मुझे भले ही भूल जाय, कोई बात नहीं, पर वह सदा सुखी रहे। यही आशीर्वाद दो।"

शांतम्मा का कंठ आर्द्र हो आया। उसका मातृ हृदय आनंद और विषाद-भरी एक मधुर वेदना का अनुभव करने लगा। वह दबे पांव चलती गई।

अपने क्षुब्ध हृदय पर नियंत्रण करते हुए शांतम्मा बस के अड्डे के पास एक हाल में गई। रवि को लिटाकर उसने अपने शिथिल शरीर को खम्भे पर टिका दिया।

सूर्योदय के पूर्व शांतम्मा सोते रवि को कंधे से लगाकर फिर जमींदार के घर गई।

फाटक खुला हुआ था। रात का पहरेदार वहांपर न था। एक दासी फर्श साफ कर रही थी।

शांतम्मा को देखकर दासी ने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा, "सुवह होने के पहले ही भीख मांगने आ गईं !"

शांतम्मा का मस्तक शर्म से झुक गया। दासी की बातों से उसे दुःख जरूर हुआ, लेकिन फिर अपने धूलि-धूसरित वस्त्रों को देख उसने सोचा कि दासी को उसके भिखारिन जैसीं दीखने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

"थोड़ा ठहरकर आ जाओ !"

दासी की यह बात सुनकर शांतम्मा ने सिर उठाकर देखा।

शांतम्मा की आंखों में आंसू देखकर दासी चकित रह गई।

"मैं भिखारिन नहीं हूं, बेटी ! मेरी जिन्दगी ही तबाह हो गई है।" शांतम्मा विचलित स्वर में बोली। दासी के चेहरे पर पश्चात्ताप का भाव झलकने लगा।

"किसको देखने आई हैं ?"

"जमींदार को !"

"मालकिन से क्या कहूं ? आपका नाम ?"

शांतम्मा थोड़ी देर सोचती रही। फिर धीरे-से बोली, "किसीसे कहने की जरूरत नहीं। मैं बाहर ही रहूंगी।" दासी को आश्चर्य हुआ।

"अभी आपने कहा था कि जमींदार को देखने आई हैं ?"

"हां, उन्हींसे यहीं पर बात करके चली जाऊंगी।" दासी ने शांतम्मा की ओर देखा। न मालूम उसने मन में क्या सोचा। वह हँस पड़ी।

"मालकिन को इस बात का मालूम न होना ही अच्छा है। देखो, उस मोटरखाने के पास बैठ जाओ।" दासी अपने काम में लग गई।

दासी की बातों का मतलब शांतम्मा की समझ में नहीं आया। वह मोटरखाने के पास जाकर बैठ गई। रवि उसकी गोद में था। दीवार से सटकर बैठते ही झपकने लगी।

मोटर की आवाज सुनकर शांतम्मा चौंककर खड़ी हो गई। ड्राइवर ने गाड़ी ले जाकर ड्योढ़ी पर रोक दी।

गंगाधरराव राम को लेकर गाड़ी के पास आया। शांतम्मा ने दिल खोलकर राम को देखा। रेशम के कपड़ों में चमकनेवाला राम उसकी आंखों को बाल भास्कर-सा लगा। उसकी आंखों में आनन्द के आंसू छलक आये।

"आप भी चलिए, पिताजी !" जमींदार का हाथ पकड़कर राम खींचने लगा।

जमींदार वात्सल्यपूर्ण वाणी में बोले, "तुम जाओ, बेटा ! ग्यारह

बजे तक लौट आना। मैं यहीं रहूंगा !" उन्होंने राम को उठाकर गाड़ी पर बिठा दिया।

गाड़ी फाटक पार करके चली गई। तबतक किसीने शांतम्मा की ओर नहीं देखा। जमींदार गाड़ी के ओझल होने तक देखते रहे।

शांतम्मा जमींदार के सामने न आ सकी। वहींपर खड़ी रही।

"सरकार, आपको देखने कोई आई है।" दासी ने खंभे की आड़ में से कहा।

"कौन ?" जमींदार ने विस्मय से पूछा।

"देखिए, वह।"

जमींदार गंगाधर राव ने उस ओर देखा। वह आश्चर्य के साथ देखते रहे, पर पहचान न पाये।

शांतम्मा जमींदार की तीक्ष्ण दृष्टि को देखकर कांप उठी।

"ओहो, यह तो शांतम्माजी हैं !" वह जोर-से बोले।

"आइए, अन्दर आइए।"

शांतम्मा का मन शांत हो गया। रवि उसकी गोद से उतर पड़ा।

"वेंकम्माजी कुशल से हैं न ?"

"वह अब नहीं रहीं।" शांतम्मा ने दुःखी स्वर में कहा।

शांतम्मा को विषादपूर्ण स्थिति में देखकर जमींदार ने वैसे भी अनुमान लगा लिया।

"बेचारी !" जमींदार यह कहकर घूम पड़े और पुकारा—"सुब्बुलू !"

दासी आ खड़ी हुई।

"इनको मालकिन के पास ले जाओ। कहो, शांतम्माजी आई हैं।"

इसके बाद जमींदार ने शांतम्मा की ओर देखकर कहा, "आप नौकरानी के साथ जाइए।"

जमींदार सीढ़ियां पार करते हुए दूसरी मंजिल पर गये। शांतम्मा नौकरानी के साथ मालकिन के पास पहुंच गई।

९ ||

जमींदार की पत्नी पार्वती का आदर पाकर शांतम्मा का हृदय कृतज्ञता से भर उठा।

शांतम्मा और रवि के नहाने के बाद पार्वती ने कीमती नये कपड़े शांतम्मा के सामने रख दिये।

"ये सब किसलिए ?" शांतम्मा ने संकोच के साथ पूछा।

पार्वती मुस्कराकर बोली, "तुम यह साड़ी पहनो और बच्चे को ये कपड़े पहनाओ।"

शांतम्मा कुछ कहे कि उससे पहले ही पार्वती वहां से चली गई।

शांतम्मा यह आदर पाकर मन-ही-मन वेंकम्मा का अभिनन्दन किये बिना न रह सकी। उस दिन वेंकम्मा ने जो सलाह दी थी, वह व्यथा-जनक और भयावनी अवश्य प्रतीत हुई थी, परन्तु आज जमींदार के घर प्राप्त होनेवाले इस आदर के द्वारा वह अनुभव करने लगी कि वह सलाह कितनी महत्वपूर्ण थी। फिर भी वह यह अन्दाज नहीं लगा पा रही थी कि यह प्रसन्नता कबतक स्थिर रह पायगी।

सुन्दर सोफाओं से अलंकृत एक कमरे में शांतम्मा और रवि को सुब्बलू ले गई।

सामने सोफा पर पार्वती बैठी थी।

"बैठ जाओ, बहन !" पार्वती ने कहा।

शांतम्मा सोफे पर बैठ गई और रवि को पास में बिठा लिया। सामने मेज पर थालियों में खाने की चीजों को देखकर रवि उंगली से संकेत करते मां का ध्यान उस ओर आकृष्ट करने लगा। शांतम्मा उसे रोकने का प्रयास करने लगी।

पार्वती हँसकर बोली, "तुम लोगों के लिए ही हैं ये चीजें। नाश्ता कीजिए।" इतना कहकर पार्वती उठकर चली गई।

सुब्बलू कॉफी ले आई। शांतम्मा और रवि ने नाश्ता करते हुए उसकी ओर देखा।

"माई, आप इनकी रिश्तेदार हैं ?" दासी ने पूछा।

"हां ! ' शांतम्मा ने जवाब दिया।

"मुझे मालूम न था, बुरा न मानिए।" दासी गिड़गिड़ाने लगी।

शांतम्मा हँस पड़ी। ऐसी हँसी वह केवल अपने पति के रहते हँसा करती थी। लेकिन इस हँसी पर वह स्वयं चकित हो गई। दासी चली गई।

रात के समय जब सारा आकाश गहन अंधकार से भर जाता है, तब अचानक बिजली के कौंधने से घबराकर, फूंक-फूंककर कदम रखनेवाले पथिक को बीच-बीच में रास्ता दीख जाने से जो आनन्द होता है, वही आनन्द शांतम्मा की हँसी में प्रस्फुटित हुआ।

दासी ने आकर प्याले और तश्तरी उठाते हुए कहा, "मालिक आ रहे हैं।"

शांतम्मा उठ खड़ी हुईं। गंगाधर राव ने अन्दर प्रवेश करते हुए कहा, "बैठिए।" वह सामने सोफा पर शान से बैठ गये।

शांतम्मा बैठने में संकोच कर रही थी। रवि ने उसकी ओर ताकते कहा, "बैठो, मां !"

गंगाधर राव हँस पड़े। बोले, "आपसे तो आपके लड़के ही ज्यादा अक्लमन्द हैं।"

गंगाधर राव ने शांतम्मा की बेअकली की ओर जो संकेत किया, उससे उसे दुःख न हुआ, क्योंकि प्रत्येक मां अपनी सन्तान के अक्लमन्द बनने की चाह रखती है। अपने चेहरे पर सन्तोष व्यक्त करते हुए वह रवि की ओर देखने लगी।

"अच्छा, आप सोफा पर बैठने में सकुचाती हैं तो ज़मीन पर ही बैठिए।" गंगाधर राव ने कहा।

गंगाधर राव जानते थे कि अनुशासन में पली हिन्दू नारी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सामने उचित आसन पर बैठने में संकोच करती है। इसलिए उन्होंने यह सुझाव दिया था।

शांतम्मा कालीन पर बैठ गई।

"आप किस काम से आई हैं।" गंगाधर राव ने पूछा।

यह सवाल सुनकर शांतम्मा स्तम्भित रह गई और उसने लज्जा से सिर झुका लिया।

गंगाधर राव के कंठ में तीखापन तो न था, पर यह सवाल शांतम्मा को अपमानजनक-सा लगा।

शांतम्मा कुछ न बोली और न उसने सिर उठाया।

क्षण-भर उसकी ओर देखकर गंगाधर राव ने कहा, "मेरा सवाल आपको बुरा लग सकता है, लेकिन मेरा उद्देश्य आपको दुःख पहुंचाना कभी नहीं रहा। आप जिस कारण से आई हैं, वह जान लेना मेरे लिए ज़रूरी है।"

शांतम्मा ने धीरे-से सिर उठाकर देखा। "राम को देखने के लिए..."

गंगाधर राव हँस पड़े। उस हँसी में कोई अव्यक्त व्यथा छिपी हुई थी।

"क्या आपने उसे नहीं देखा ?"

शांतम्मा उनकी ओर देखती रही, पर कोई उत्तर न दे सकी।

"गाड़ी पर बैठते शायद आपने देखा था !"

"जी हां।"

"तो फिर देख लिया न !"

यह उत्तर शांतम्मा को तीर-सा लगा। गंगाधर राव ने जेब से चुरुट निकाला। उसे सुलगाकर कहा, "माता का प्रेम !"

शांतम्मा ने राव की ओर देखा।

"मैं इससे इंकार नहीं कर सकता। लेकिन इन तीन वर्षों के अनुभव ने मुझे यह सिखाया है कि मातृ प्रेम से पालतू प्रेम कहीं ज्यादा होता हैं। शांतम्माजी, आपके एक और लड़का है ! हमारे कोई संतान नहीं है, इसीलिए तो हमने आपके बड़े पुत्र को गोद लिया है।" यह कहते हुए गंगाधर राव सोफा पर से उठे और पुनः बोले, "मैं नहीं समझ पाता कि भगवान मानव के हृदय की किस प्रकार के विचित्र पदार्थों से

सृष्टि करते हैं। मुझे लगता है, मानव का यह समझना सरासर भूल है कि हमने एक-दूसरे को भलीभांति समझ लिया, उलटे अपने-आपको न समझ पा सकनेवाला दुर्बल मन को समझने का जो दावा करता है, वह बिल्कुल गलत है।"

"आप यह क्या कह रहे हैं?" विस्मित स्वर से गंगाधर राव के भाव को न समझने की दशा में शांतम्मा बोल पड़ी। गंगाधर राव के गंभीर मुखमंडल पर पश्चात्ताप की लहर दौड़ रही थी।

"यह मैं जो कहता हूं, आपके प्रति नहीं, बल्कि अपने प्रति है।" फिर सोफा पर बैठकर झुकते हुए शांतम्मा के चेहरे पर दृष्टि गड़ाकर बोले, "इन तीन वर्षों में आप अपने पुत्र को देखने नहीं आईं। इसलिए मैंने यह सोचकर मन-ही-मन आपका अभिनन्दन किया कि आप अपनी संतान की शुभकामना करनेवाली माता हैं।" गंगाधर राव का कंठ रुद्ध हो गया।

"अपनी सन्तान को देखने की कामना करना क्या गलत है?" अपनी व्यथा शांतम्मा ने व्यक्त की।

"आप और जो भी चीज चाहतीं, मैं इतना दुःखी न होता..."

"अपने पुत्र को देखने पर..."

"वह पहचान लेगा!" यह सोचते हुए गंगाधर राव उठ खड़े हुए। फिर बोले, "हो सकता है, शायद वह पहचान न पाये। मैं आपका परिचय कराऊं तो भी इससे आपका कौन लाभ होगा?"

"मैं समझ नहीं पाती कि इससे लाभ न हो तो नुक्सान क्या है!"

गंगाधर राव ने कभी कल्पना न की थी कि शांतम्मा ऐसा सीधा सवाल भी कर बैठेगी! उनका चेहरा तत्काल लाल हो गया, परन्तु अपने ऊपर नियन्त्रण करते हुए उन्होंने व्यथापूर्ण हँसी हँस दी।

"मैं भले ही यह न दिखा पाऊं कि अमुक प्रकार का नुकसान है, परन्तु मैं भली भांति जानता हूं कि इसमें नुकसान जरूर है। आप सचमुच उसकी माता हैं तो गंभीरतापूर्वक सोचने से आपको ही मालूम होगा कि इस वक्त ऐसी कामना करना आपके लिए उचित नहीं है।... माता अपनी संतान को लेकर क्या चाहती है?"

थोड़ी देर तक गंगाधर राव ने उत्तर की प्रतीक्षा की। शांतम्मा को मौन देखकर फिर वह बोलने लगे, "मां अपनी संतान की शुभ-कामना करती है।...राम को जो भाग्य प्राप्त हुआ, वह इस संसार में कितने बच्चों को प्राप्त होगा? आपके पास ही अगर राम रहता तो खाने के लिए तरसता, मैले कपड़ों में ढंका रहता, जमीन पर सोता..."

"रावसाहब!" अपना संयम खोकर शांतम्मा बीच में ही बोल उठी। गंगाधर राव ने शांतम्मा के चेहरे को पढ़ा। उसकी आंखों से आंसू गिर रहे थे।

"रोती क्यों हैं?...रोइये नहीं।..."

शांतम्मा ने आंसू पोंछ लिये।

"शांतम्माजी, एक काम करेंगी?"

शांतम्मा ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा।

"आप अपने लड़के को ले जा सकेंगी?"

यह प्रश्न सुनकर शांतम्मा चकित रह गई। आश्चर्य के साथ राव को देखते उठ खड़ी हुई और बोली, "मुझे अगर मालूम होता कि मेरी इस छोटी-सी कामना से आपको दुःख होगा तो मैं कभी प्रकट न करती। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए।" रवि को साथ लेकर शांतम्मा दो कदम आगे बढ़ी।

"ठहरिए तो!" रावसाहब ने पुकारा।

शांतम्मा रुक गई।

जमींदार मुस्कराये। उस मुस्कराहट में विजय का अभिमान भरा था। उन्होंने तर्क द्वारा शांतम्मा की कामना को गलत साबित कर दिखाया। यही नहीं, उसके निर्णय को ही बदल डाला। जेब में से बटुआ निकालकर कहा, "शांतम्माजी!"

शांतम्मा देखती रही।

"अक्लमंद लोग कभी धन का तिरस्कार नहीं करते।" बटुए में से नोट निकलकर राव गिनने लगे।

उनके कथन में असत्य नहीं है, यह बात शांतम्मा ने वेंकम्मा की मृत्यु के बाद समझ ली थी। इसीलिए वह मौन रही।

शांतम्मा ने चुपचाप रुपये ले लिये। बड़ी सरलता से उसे रुपये स्वीकार करते देखकर रावसाहब को आश्चर्य हुआ।

"अच्छा, अब चली!"

"एक बात और सुनिए..."

शांतम्मा ठहर गई।

"आप कहां जायंगी?"

इस सवाल का जवाब शांतम्मा नहीं दे पाई। वास्तव में उसने किसी निश्चित स्थान पर जाने का निर्णय भी नहीं किया था।

"अच्छी बात है। आप जहां जाना चाहें, वहां जाइए। लेकिन कहीं यह न बताइए कि राम आपका लड़का है।"

शांतम्मा को मर्मांतक पीड़ा हुई, लेकिन वह चुप रही।

"क्या जवाब है, आपका?"

"ऐसा ही होगा।" शांतम्मा ने धीरे-से उत्तर दिया।

"अब जा सकती हैं।" गंगाधर राव ने अधिकारपूर्ण स्वर में आदेश दिया।

शातम्मा रवि की उंगली पकड़कर कमरे से निकल पड़ी।

१० ||

गंगाधर राव ने अपने पिता के नाम एक पाठशाला स्थापित की थी। उसीमें राम पढ़ता है। उस पाठशाला के शिक्षक का नाम धर्मय्या है। धर्मय्या गंगाधर राव की जाति का था और सज्जन था। इसलिए उसे प्रधान अध्यापक का पद देकर पाठशाला का सारा कार्य गंगाधर राव ने उसे सौंप दिया था।

एक दिन धर्मय्या जब बच्चों को पाठ पढ़ा रहा था, तब शांतम्मा रवि को लेकर वहां पहुंची।

धर्मय्या की बगल में एक छोटी-सी कुर्सी पर बैठे राम पर शांतम्मा की दृष्टि पड़ी। राम भी उसीकी ओर देख रहा था।

"आप कौन हैं ?" धर्मय्या ने शांतम्मा से पूछा। वह बोली नहीं, वह राम की ओर अपलक नयनों से देखती रही। धर्मय्या सोचने लगा कि वह राम की ओर ऐसे क्यों ताक रही है।

पाठशाला के सभी विद्यार्थी शांतम्मा की ओर आश्चर्य-भरी निगाह से देख रहे थे।

"आप यहांपर क्यों आई हैं ?" धर्मय्या ने तीव्र स्वर में पूछा। शांतम्मा संभल गई।

"अपने लड़के को आपकी पाठशाला में भर्ती कराने के लिए।"

शांतम्मा यह विचार मन में पक्का करके ही वहां गई थी। लेकिन वहां पहुंचने पर असली बात भूलकर वह राम को देखने लग गई थी। जब उसे मालूम हुआ कि ऐसे देखना उसीके लिए हानिकारक है, तब उसने अपनी निगाह हटाली। राम अब भी शांतम्मा की ही ओर देख रहा था।

"आपका नाम ?" प्रधानाध्यापक ने पूछा।

"शांतम्मा। मेरे लड़के का नाम रवि है।" शांतम्मा ने शिक्षक के दूसरे सवाल का भी पहले ही उत्तर दे दिया।

"इसी गांव की हैं ?" सन्देह-भरे स्वर में उसने पूछा।

"फिलहाल यही गांव है।"

"कहां रहती हैं ?"

इसका उत्तर भी वह शायद यही दे देती कि "फिलहाल यहींपर हूं।" पर यह सोचकर चुप रह गयी कि यह उत्तर बच्चों के सामने हास्यास्पद होगा।

धर्मय्या की बगल में पेटी पर बैठी लड़की लक्ष्मी सबसे छोटी थी। चार साल से ज्यादा उसकी उम्र न रही होगी। इतनी छोटी-सी उम्र में उस लड़की को पाठशाला में आया देखकर शांतम्मा विस्मित हो उठी।

लक्ष्मी ने पेटी पर बैठे रवि की ओर पैर हिलाया। रवि ने क्रोध में आकर पैर उठाया। कहा, "लात मारूंगा।"

सब विद्यार्थी ज़ोर से हँस पड़े। रवि घबड़ा कर माँ से चिपक

गया। बच्चे फिर हँसने लगे।

अबतक धर्मय्या शांतम्मा और रवि की ओर वारी-वारी से देखकर रूप-छवि में समानता के लक्षण पाता रहा। धर्मय्या जानता था कि राम दत्त-पुत्र है। लेकिन गंगाधर राव ने कभी उसे यह नहीं बताया कि वह किसका लड़का है।

"देखो, बाबूजी!..." लक्ष्मी ने विचार-निमग्न धर्मय्या का हाथ पकड़ा।

शांतम्मा ने भांप लिया कि लक्ष्मी धर्मय्या की लड़की है। धर्मय्या धीरे-से कुर्सी पर से उठा। शांतम्मा की ओर देखते हुए बोला, "देखो, बहन, इस गली के नुक्कड़ पर मेरा घर है। पाठशाला के खतम होते ही मैं घर लौटूंगा। वहांपर आ जाना। अच्छा दिन देखकर रवि को स्कूल में भर्ती कर सकती हैं।" शान्त स्वर में धर्मय्या ने कहा।

"अच्छा, ऐसा ही करेंगे।"

रवि के साथ शांतम्मा बाहर चली गई।

राम के मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। शांतम्मा की बड़ी इच्छा थी कि वह राम को बोलते हुए सुने। उसने यह जो साहस किया, वह जमींदार की दृष्टि में अक्षम्य अपराध हो सकता है। लेकिन मातृ-प्रेम का अनुभव माता ही कर सकती है। इस सत्य के सामने जमींदार से प्राप्त होनेवाला दण्ड शांतम्मा को हल्का ही प्रतीत हुआ।

शांतम्मा ने स्कूल से बाहर आने पर देखा—सामने आम के पेड़ के नीचे जमींदार की मोटर खड़ी थी। गाड़ी के आगे ड्राइवर समय काटने के लिए शतरंज खेल रहा था।

ड्राइवर ने शांतम्मा और रवि की ओर देखा।

"यह मोटर किसकी है?" शांतम्मा ने पूछा।

"यह गाड़ी जमींदार गंगाधर रावसाहब की है।" संक्षेप में उत्तर देकर ड्राइवर फिर खेल में लीन हो गया।

उसकी लापरवाही देखकर शांतम्मा कुछ बोल नहीं पाई। चुपचाप आम के पेड़ के नीचे जा बैठी।

शांतम्मा के पास से न मालूम रवि कब खिसक गया। उसने

शतरंज के मुहरों को अपने पैरों से बिखेर दिया। ड्राइवर की आंखों में आग वरसने लगी। पर रवि को हँसते देख उसका क्रोध ठण्डा पड़ गया।

"शतरंज खेलोगे?"

"हां!" रवि ने उत्साह के साथ उत्तर दिया। शांतम्मा ने देखा, कि रवि ड्राइवर के साथ शतरंज में उलझा है।

इतने में स्कूल की घंटी वजी। वच्चे किलकारियां मारते वाहर आये।

धर्मय्या के साथ राम गाड़ी के पास पहुंचा। धर्मय्या के निकट ही लक्ष्मी खड़ी थी।

राम ने गाड़ी पर सवार होकर शांतम्मा की ओर देखा। राम का दिल न मालूम क्यों, उसकी ओर खींच रहा था। उसका छोटा-सा मस्तिष्क पुरानी स्मृति को ताजा करने के प्रयत्न में लगा था।

"क्या आप कभी हमारे घर आई थीं?" राम ने शांतम्मा से पूछा।

शांतम्मा का मातृहृदय राम की वाणी सुनकर उमड़ पड़ा। आनन्द से अश्रुपूरित नेत्रों से राम की ओर देखते हुए कुछ कहे कि रवि वोल उठा, "यह मेरी मां है।"

शांतम्मा ने कहा "मैं तुम्हारे घर नहीं गई। मैं तुम्हें नहीं जानतीं, वेटा!"

राम को बड़ी निराशा हुई। उसका ख्याल था कि दुनिया-भर में उसे न जाननेवाला कोई नहीं है।

"तो फिर मेरी ओर क्यों देखती हैं?" राम ने क्रोध का अभिनय करते हुए पूछा।

यह सवाल उचित ही था, लेकिन शांतम्मा ने उसका कोई जवाव नहीं दिया, वल्कि वह लौटकर जाने लगी।

राम हँस पड़ा। गाड़ी रवाना हुई। गाड़ी के जाते समय राम रवि की ओर और रवि राम की ओर देखते रहे।

"बहन!"

धर्मय्या की वाणी शांतम्मा के कानों में गूंज उठी। शांतम्मा घूम

पड़ी।

"मेरे घर चलेंगी ?" धर्मय्या ने पूछा।

"चलिए।" शांतम्मा ने उत्तर दिया।

शांतम्मा की मनोदशा अब बड़ी विचित्र थी। वह क्या करती है और उसे क्या करना चाहिए, यह उसे बिलकुल ज्ञात न था। उसके मन में एक उत्कंठा जागृत हुई। उसके हृदय में व्यथा और प्रसन्नता के बीच संघर्ष होने लगा। वह कभी रोना चाहती थी और कभी हँसना, पर कभी ऐसा प्रतीत होता था कि रोना-हँसना भी नहीं चाहिए। वह चुपचाप धर्मय्या के पीछे रवि को साथ लेकर जा रही थी। धर्मय्या की बेटी लक्ष्मी रवि की ओर तीव्र दृष्टि से देखती क्रोध व्यक्त कर रही थी। रवि उसका परिहास कर रहा था।

नाम के अनुरूप व्यक्तियों के चरित्र का होना बहुत कम देखा जा सकता है। कुछ लोगों के नाम ऐसे होते हैं, जो उनके माता-पिता की उत्कट आशा को व्यक्त करते हैं, तो कुछ उनकी विशाल भावनाओं का परिचय देते हैं। कुछ लोगों के नाम उनके वैराग्य को प्रदर्शित करते हैं।

लेकिन धर्मय्या के नामकरण में उनके माता-पिता ने सही निर्णय किया है। उनकी धर्मनिष्ठा और मानसिक दृढ़ता से परिचित लोग यह बात अवश्य स्वीकार करते हैं।

धर्मय्या की पत्नी का देहान्त हुए तीन वर्ष पूरे होने को हैं। लक्ष्मी जब एक वर्ष की भी न हो पाई थी तभी वह मातृहीना बन गई। परन्तु धर्मय्या ने फिर शादी का नाम तक न लिया। वह स्वयं मां बनकर लक्ष्मी को पाल रहा है। कोई मित्र व रिश्तेदार पुनर्विवाह की चर्चा करता है तो वह एक म्लान हँसी हँसकर रह जाता है।

धर्मय्या घर पहुंचकर जब ताला खोलने लगा, तब शांतम्मा ने आश्चर्य से पूछा, "घरवाली नहीं हैं क्या ?"

"मैं और मेरी लक्ष्मी—हम दो जने ही हैं !" धर्मय्या केवल यही उत्तर दे पाया।

वह एक खपरैल का मकान था, फिर भी सारी चीजें करीने

से सजाईं गई थीं।

लक्ष्मी को गोद में लिए धर्मय्या आरामकुर्सी पर बैठ गया। शांतम्मा की ओर देखते हुए बोला, "बहन, आप उस बेंच पर बैठ जाइए।"

"आप खाना खाइये।" शांतम्मा ने खड़े-खड़े कहा।

"खाना फिर खा लेंगे। आपसे कुछ बातें करनी हैं।" इन बातों में शांतम्मा ने दृढ़ता देखी। डरते-डरते वह बेंच पर बैठ गई। रवि को बगल में बिठाया।

"राम आपका कौन लगता है?" धर्मय्या ने पूछा। शांतम्मा भय और विस्मय से कांप उठी।

रवि ने बेंच से उतरकर लक्ष्मी को बुलाया। धर्मय्या ने लक्ष्मी को गोद से उतारा। दोनों खेलने चले गये।

शांतम्मा से उत्तर न पाकर धर्मय्या को यह निर्णय करने में विलंब न हुआ कि राम शांतम्मा का लड़का है। उसी स्वर में उसने कहा, "आपका लड़का है न?"

"आपको कैसे मालूम हुआ?" कुछ विमूढ़-सी होकर शांतम्मा ने पूछा।

"आप ही की वजह से।"

"सो कैसे?"

"आपके हृदय की व्यथा बता रही है। मेरे सामने छिपाने की कोशिश न करो, बहन!" स्नेह से उसने कहा।

'बहन' शब्द शांतम्मा के लिए अमृत भरी वाणी-सा प्रतीत हुआ। उसे अपने छोटे भाई की, जो घर से भाग गया था, याद ताजा हो आई। सजल नेत्रों से धर्मय्या को देखते हुए बोली, "कृपा करके आप इस सचाई को गुप्त ही रखिए।"

"क्यों?" धर्मय्या ने आश्चर्य से पूछा।

धर्मय्या को शांतम्मा ने सारी कहानी आद्योपांत कह सुनाई। इस पर धर्मय्या दीर्घ सांस लेकर बोला, "तो तुम्हारा कहां जाने का विचार है?"

"गंगाधर रावजी ने भी मुझसे यही सवाल पूछा था, लेकिन मैं कोई

जवाब नहीं दे पाई ।"

"इसपर उन्होंने क्या कहा ?" बड़ी आतुरता से धर्मय्या ने पूछा ।

"कहा कि तुम चाहे जहां भी रहो, यह न कहो कि राम तुम्हारा बेटा है।" शांतम्मा ने उत्तर दिया ।

धर्मय्या कुर्सी पर से उठकर बोला, "अच्छी बात है । समझो कि यह तुम्हारे भाई का घर है । तुम्हारे यहां रहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है । मगर लक्ष्मी की जिम्मेदारी तुमपर होगी !"

शांतम्मा उठ खड़ी हुई और बोली, "भैया, तुम्हारे अहसान को मैं कभी नहीं भूल सकूंगी ।"

शांतम्मा की बात को काटते हुए धर्मय्या बोला, "नहीं, नहीं, एक-दूसरे का अहसानमंद होना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं ।" धर्मय्या ने ये शब्द कहते हुए दो कदम आगे बढ़ाये और पुकारा, "लक्ष्मी !"

बच्चे दोनों दोस्त बन गये थे । लक्ष्मी और रवि रसोई में से खेल छोड़कर भाग आये ।

"छीः-छी...यह क्या है, बेटी !" लक्ष्मी के शरीर पर से मैल पोंछते हुए धर्मय्या ने उसे अपनी गोद में ले लिया ।

"उस लड़के ने..." अपनी उंगली से रवि को अपराधी ठहराते हुए फरियाद की ।

इसके बाद सबने खाना बांटकर खा लिया ।

धर्मय्या से रसोई की सामग्री लेकर शांतम्मा रात के भोजन की तैयारी में लग गई ।

धर्मय्या का शांतम्मा को अपने घर में इतनी जल्दी स्थान देना उसे आश्चर्यजनक-सा लगा । लेकिन धर्मय्या की मनोदशा से वह परिचित हो गई थी। अलावा इसके धर्मय्या के वंश और रिश्तेदारों के परिचय के बाद शांतम्मा को मालूम हुआ कि धर्मय्या उसका निकट का रिश्तेदार है । इसलिए शांतम्मा बड़ी तृप्ति का अनुभव करने लगी ।

धर्मय्या लक्ष्मी के भविष्य को सुन्दर बनाना चाहता था । उसे इस बात का आनन्द हुआ कि सच्चे चरित्रवाली शांतम्मा की देख-रेख में लक्ष्मी का पालन-पोषण होगा ।

११

दिन निकलते जा रहे हैं। धर्मय्या के घर में शांतम्मा की जिन्दगी बड़ी शांति से बीतने लगी।

धर्मय्या का कर्म-पथ शांतम्मा को आदर्शमय प्रतीत हुआ। इसलिए क्रमशः शांतम्मा के मन में धर्मय्या के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई।

समय के मूल्य से परिचित धर्मय्या नियमित रूप से स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ व संध्यावंदन करता था। अतः उसके प्रति शांतम्मा के मन में गुरुभाव भी बढ़ता गया।

एक महीना बीत गया। एकदिन धर्मय्या कुर्सी पर बैठा कुछ पढ़ने में मग्न था। शांतम्मा उसके पास आकर खड़ी हो गई, पर बोलने में संकोच कर रही थी। धर्मय्या ने भांप लिया और कहा, "उस बैंच पर बैठ जाओ, बहन !"

शांतम्मा ने बैठते हुए मंद स्वर में कहा, "भैया !"

किताब बंद करके धर्मय्या ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"ये पचास रुपये अपने पास रखिये।" दस के पांच नोट शांतम्मा ने धर्मय्या की ओर बढ़ाये। धर्मय्या ने आश्चर्य से पूछा, "किसलिए ?"

"जरूरी खर्च के लिए !"

धर्मय्या बात समझ गया। "बहन को खिलाने की कीमत लेने का स्वार्थ अभी मुझमें पैदा नहीं हुआ, बहन !" इन शब्दों के साथ धर्मय्या कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। किताब लेकर अपने कमरे में जाते हुए बोला, "जब जरूरत पड़ेगी तो मैं खुद मांगकर ले लुंगा, बहन !"

कुछ दिन बीतने पर एक रोज स्नान के बाद धर्मय्या पूजा करने कमरे में चला गया। शांतम्मा उसका इंतजार करती रही। धर्मय्या को बाहर आते देख बोली, "भैया, रवि का नटखटपन बढ़ता ही जा रहा है।"

"तो मैं क्या करूं, बहन ! तुम्हीं बताओ न ?"

"लक्ष्मी के साथ इसे भी स्कूल ले जाइए।"

धर्मय्या मुस्करा पड़ा, "इसके लक्षण देखने से लगता है कि सरस्वती इससे कोसों दूर है। अच्छी बात है, ऐसा ही करूंगा।"

उस दिन धर्मय्या डरा-धमकाकर रवि को पाठशाला ले गया। पर रवि ने अलग बैठने से इन्कार कर दिया। उसने लक्ष्मी की बगल में अपनी जगह बना ली। धर्मय्या ने 'क ख ग' लिखकर दिया, तो बड़ी विनय के साथ स्लेट ले ली। थोड़ी देर नकल करने के बाद स्लेट को दूर फेंक दिया।

स्कूल के सब लड़के हँस पड़े। स्लेट फूटी नहीं थी। लक्ष्मी ने स्लेट उठाकर 'क ख ग' लिखा और कहा, "इसकी नकल उतारो।"

राम रवि की तरफ देख रहा था। रवि ने भी एक-दो बार उसकी ओर देखा।

"मास्टरजी ! यह लड़का उस दिन गाड़ी के पास आया था न ?" राम ने पूछा।

"हां, बेटा ! मेरा भानजा है।" धर्मय्या ने जवाब दिया।

रवि मास्टरजी का रिश्तेदार है। इसलिए राम के मन में रवि के प्रति स्नेह-भाव पैदा हो गया।

स्कूल की घंटी बजी।

सब लड़के उछलते-कूदते बाहर आ गये।

रोज की भांति लक्ष्मी और राम गाड़ी के पास पहुंचे। रवि को बड़ा गुस्सा आया। वह मुंह बनाकर स्कूल के बाहर बैठ गया।

लक्ष्मी ने मुड़कर पुकारा, "रवि !"

रवि कुछ नहीं बोला। लक्ष्मी दौड़कर उसके पास आई। उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए बोली, "चलो, गाड़ी पर चढ़ें !"

"ऊं ! मैं नहीं आऊंगा—उस कमबख्त गाड़ी में !" रवि ने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा।

यह बात राम के कानों में पड़ गई। अपनी गाड़ी की निंदा करते सुनकर उससे रहा न गया।

"हूं ! कमबख्त गाड़ी है ? फिर यह शब्द मुंह से निकालोगे तो...!" चेतावनी की दृष्टि से राम ने रवि को देखा।

रवि रोषभरी आकृति में उठ खड़ा हुआ। "मैं कहता हूं कि वह कमबख्त गाड़ी है !"

राम रवि पर कूद पड़ा। लक्ष्मी राम के हाथों को पकड़कर बोली, "हमारे रवि को मत मारो।"

लापरवाही दिखाते हुए राम बोला, "लक्ष्मी ने मना किया, इसलिए छोड़े देता हूं ! जानते हो, मैं कौन हूं ?"

इसके बाद घंटी बजी। बच्चे किलकारी भरते स्कूल में चले गये। रवि मन-ही-मन दुःखी था, पर लक्ष्मी के अनुरोध पर जबर्दस्ती कक्षा में जा बैठा। राम पर उसका क्रोध बढ़ता जा रहा था। उसने एक-दो बार राम की ओर क्रोध-भरी दृष्टि दौड़ाई।

स्कूल में छुट्टी होते ही रवि हाथ में पत्थर लेकर एक ओर को खड़ा हो गया। फिर उपेक्षा के साथ मजाक उड़ाते जानेवाले राम पर रवि ने पत्थर फेंका।

पत्थर राम के सिर पर लगा। वह कराहकर बैठ गया। रवि घर की ओर दौड़ गया।

धर्मय्या की आंखों के सामने ही यह अप्रत्याशित घटना मिनटों में हो गई।

राम के सिर से खून बहने लगा। लक्ष्मी धर्मय्या और कुछ लड़के राम के चारों ओर इकट्ठे हो गये। धर्मय्या ने तौलिया फाड़कर पट्टी बांध दी।

ड्राइवर का पारा चढ़ गया। वह रवि को पकड़ने के लिए उसका पीछा करने लगा। रवि धर्मय्या के घर में घुस गया।

ड्राइवर हांफते हुए जब द्वार पर पहुंचा, तो शांतम्मा सामने खड़ी थी।

"वह नटखट लड़का कहां गया ?" ड्राइवर ने पूछा।

"कौन ?"

"और कौन ? तुम्हारा लड़का ? उसने मेरे छोटे सरकार पर पत्थर फेंका ! खून बह रहा है, खून..."

"राम पर पत्थर फेंका ?"

"हां-हां।" ड्राइवर ने कहा।

शांतम्मा कुछ बोली नहीं। सीधे स्कूल की ओर भाग गई।

ड्राइवर ने सारा घर ढूंढ़ा। उसे रवि कहीं दिखाई न दिया। वह खाट के नीचे छिपकर ड्राइवर की दृष्टि से बचा रहा।

शांतम्मा राम के पास पहुंची। तबतक राम संभल गया था। शांतम्मा की ओर देखकर राम ने पूछा, "आपका लड़का ही है न वह?" शांतम्मा ने सिर हिलाया।

ड्राइवर आखिर रवि को पकड़ने में सफल हुआ। रोते-बिलखते रवि को लाकर राम के सामने खड़ा कर दिया।

क्रोध से जलते हुए राम ने रवि के गाल पर एक चांटा मार दिया। शांतम्मा बीच-बचाव करने लगी।

"तुम अच्छी हो, इसलिए तुम्हें देखकर मैं इस लड़के को माफ कर रहा हूं, वरना मार डालता!" यह कहते हुए राम गाड़ी पर जा बैठा।

धर्मय्या भी जमींदार के सामने इस घटना की सही जानकारी देने और उनका समाधान करने के ख्याल से लक्ष्मी के साथ गाड़ी की पिछली सीट पर जा बैठा। रोते हुए रवि के लिए शांतम्मा के मन में सहानुभूति पैदा नहीं हुई, बल्कि वहांपर पड़ी छोटी लकड़ी लेकर रवि को पीटते हुए बोली, "अब कभी बड़ों को नहीं मारेगा न?" यह देखकर राम गाड़ी से उतर आया और बुजुर्ग की भांति समझाने लगा, "वह रो रहा है, अब मत पीटो।" उसकी प्यार भरी बात को सुनकर शांतम्मा अपने दुख को न रोक पायी। हठात् राम को गोद में लेकर सजल नेत्रों से उसे हृदय से लगाकर प्यार करने लगी। राम किसी अनिर्वचनीय आनंद में मंत्र-मुग्ध-सा रह गया।

"बहन!" यह संबोधन शांतम्मा के कानों में पड़ा। शांतम्मा ने धर्मय्या को देखा। राम को गोद से उतारकर रवि को लेकर उसने घर की राह ली।

धर्मय्या जब लौटा, बारह से अधिक बज चुका था। तबतक शांतम्मा भय और दुखभरे हृदय से उसका इन्तजार करती रही।

"क्या हुआ, भैया?" शांतम्मा ने उद्विग्नता से पूछा।

पगड़ी उतारकर उसने खूंटी पर टांग दी और पसीना पोंछते हुए

कुर्सी पर गिर पड़ा ।

मांगकर पानी पिया और पूछा, "रवि कहां है ?"

"सो रहा है ।"

"अच्छा, लक्ष्मी को खाना खिलाओ ।"

"बाबूजी, तुम भी खाओ, मैं भी खाऊंगी ।" लक्ष्मी ने हठ किया और जमींदार के घर में लड्डू की जो पोटली मिली थी, उसे खोलते हुए एक कोने में जा बैठी ।

धर्मय्या ने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा, "बहन, राम सचमुच तुम्हारा बेटा है !" शांतम्मा को इस आफत से राम ने ही बचाया था। यह खबर सुनाने के पहले भूमिका के रूप में धर्मय्या ने ये बातें कहीं ।

"फिर भी तुमने जो किया, वह ठीक नहीं था, बहन !"

"कैसे ?" विस्मय से शांतम्मा ने पूछा ।

"राम को गोद में लेना और प्यार करना।"धर्मय्या ने विरक्ति भाव से कहा ।

"आपका कहना सही है, भैया !" शांतम्मा अपनी भूल का स्मरण करते हुए सिर झुकाकर खड़ी हो गई ।

"राम तुम्हारा लड़का हो सकता है, पर तुम यह साबित करने के लिए यहांपर हो कि वह तुम्हारा लड़का नहीं है । यह घटना जमींदार को मालूम हो जाय तो तुम्हारा यहां रहना मुश्किल हो जायगा, उल्टे मेरी नौकरी भी छूट जायगी ।" शांतम्मा की आँखों से आंसुओं की झड़ी-सी लग गई । धर्मय्या ने यह देखा तो कहा, "रोती क्यों हो ? ऐसी कोई घटना तो नहीं हुई कि तुम इतनी दुखी हो उठीं ! यह तो खुशी मनाने का समय है !" धर्मय्या ने समझाया ।

आंसू पोंछते हुए शांतम्मा ने इस तरह देखा मानों कुछ हुआ ही न हो!

धर्मय्या कहता जा रहा था, "गाड़ी में जाते समय राम ने मुझसे पूछा, 'मास्टरजी, रवि की मां क्या पागल है ?' मैंने यह नहीं कहा कि तुम पागल नहीं हो, बल्कि यही कहा, 'तुमको वह बहुत प्यार करती है !' उसने कहा 'आप ठीक कहते हैं। मास्टरजी, वह बड़ी अच्छी हैं ।' इसके बाद मैंने राम से पूछा, 'तुम अपने पिता से इस घटना के बारे में

क्या कहोगे ?' राम थोड़ी देर तक सोचता रहा और बोला, 'मास्टर-जी, असली बात बताऊं तो वह क्या मुझे खराब लड़का समझेंगी ?' मैंने समझाया, 'उसके तुम्हें खराब लड़का समझने की बात दूर रही, तुम्हारे पिता उसे गांव से निकाल देंगे।' राम फिर सोच में पड़ गया। उसके चेहरे पर दुःख की रेखाएं झलक आईं। उसने ड्राइवर से कहा, "ड्राइवर, स्कूल के पास जो घटना हुई, उसे पिताजी से मत कहना। समझे।' ड्राइवर ने गाड़ी चलाते हुए हामी भर दी। राम के गाड़ी से उतरते ही जमींदार सामने आये और राम के सिर पर पट्टी बंधी देखकर उन्होंने क्रोध से पूछा, "मास्टरजी, यह क्या हुआ है !' राम ने हँसते हुए उत्तर दिया, "मास्टरजी इसके बारे में कुछ नहीं जानते, पिताजी। स्कूल के छोड़ते ही मैं गाड़ी के पास दौड़ने लगा तो पत्थर पर पैर फिसल गया और गिर पड़ा। पत्थर के लगने से सिर पर चोट आ गई। बेचारे मास्टरजी ने अपना तौलिया फाड़कर पट्टी बांध दी।" राम की ये बातें सुनकर मेरी जान में जान आई।" ये शब्द कहते-कहते धर्मय्या कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ।

शांतम्मा ने हृदय से राम को दीर्घायु होने के आशीर्वाद दिये। उसने प्रसन्नता की सांस ली। फिर उठकर रसोई में चली गई।

१२ ||

रवि ने पाठशाला से लंबी छुट्टी ले ली। वह दिन में दो-तीन लड़कों को पीट डालत और शिकायतें आतीं। उसके नटखटपन को देखकर शांतम्मा की सहनशीलता भी जवाब देने लगी।

धर्मय्या घर पर रात के समय रवि को पढ़ाने का प्रयत्न कर असफल हो गया। इसलिए वह उसकी पढ़ाई में विशेष दिलचस्पी लेकर अपना समय बरबाद नहीं करना चाहता था।

एक दिन पड़ोसिन अपने बच्चे को गोद में लिये आ पहुंची और उसकी पीठ पर मार के निशान दिखाते हुए बोली, "भई, तुमने कैसे नट-

खट लड़के को जन्म दिया है !" शांतम्मा ने चकित होकर उस लड़के की पीठ को देखा। उसकी पीठ छिल गई थी। वह कराह रहा था।

"क्षमा करो, बहन। नासमझ लड़का है। मैं उसे दण्ड दूंगी।" शांतम्मा ने प्रार्थना-भरे स्वर में कहा।

वह औरत बरस पड़ी और बोली, "तुम भी कैसी मां हो ? बताये देती हूं, मेरे पति को मालूम हो जायगा तो वह चुप न रहेंगे। बहुत बुरा होगा। खबरदार रहो !" मैं धर्मय्या का मुंह देखकर आज माफ कर देती हूं। आइंदा ऐसी बात हुई तो खैर नहीं है।" जली-कटी सुनाती हुई वह स्त्री आसमान को सिर पर लिये वहां से चली गई।

शांतम्मा उस स्त्री की ओर जड़वत् देखती रही। इसके बाद बेंत हाथ में लिये खाते रवि को पीटने के लिए रसोई की ओर गई।

थाली में झूठन भरी थी, पर रवि का पता न था। पड़ोसिन की बातें सुनते ही वह पिछवाड़े की राह से भाग गया था।

शांतम्मा ने पिछवाड़े आम के पेड़ पर देखा। रवि जब भी कोई गलती कर बैठता, उस पेड़ पर चढ़ जाता। बड़े लोग भी उस पेड़ पर चढ़ने में झिझकते हैं, पर वह उसकी शाखाओं में इस तरह छिपकर बैठा था कि शांतम्मा की निगाह उसपर न पड़ी।

"रवि !" शांतम्मा ने पुकारा।

लड़का तो दिखाई नहीं दिया, लेकिन टहनियां हिल उठीं। यही रवि के छिपने का निशान था।

"उतर आओ।" शांतम्मा ने कहा।

"तुम पीटोगी।" भयकंपित स्वर में रवि ने उत्तर दिया।

"आते हो कि नहीं ?"

"मैं नहीं आऊंगा।" रवि ने जोर से कहा।

"अच्छी बात है !" क्रोधभरे स्वर में यह कहकर शांतम्मा भीतर चली गई।

अंधेरा फैलने तक रवि पेड़ पर ही बैठा रहा। इसके बाद उतर आया। इधर-उधर चक्कर काटकर दस बजे के करीब घर लौटा। सब सो रहे थे। दबेपांव वह रसोई में पहुंचा और बर्तन टटोलने लगा।

शांतम्मा ने एक थाली में चावल-दाल व तरकारी परोसकर ढंककर रख दी थी। मां की इस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह थाली के सामने बैठ गया।

आहट पाकर शांतम्मा खाट पर से उठ बैठी और खाट के नीचे पड़े बेंत को लेकर रसोई की ओर गई। किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर देखने लगी।

रवि चारों तरफ भयभीत दृष्टि डालता हुआ खा रहा था। उस दृश्य को देखकर शांतम्मा आगे न बढ़ सकी। लौट आई। खाट के नीचे बेंत डालकर दीर्घ निश्वास लिया और लेट गई।

रवि खाना खाकर धीरे-धीरे मां की चारपाई के पास आया और यह जानने के लिए मां की ओर देखने लगा कि वह सो गई कि नहीं। शांतम्मा ने झट रवि का हाथ पकड़ लिया।

"मुझे मत मारो, मां!" रवि जोर से चिल्ला पड़ा। उसकी आवाज सारे घर में गूंज उठी। धर्मय्या अखबार फेंककर शांतम्मा के कमरे में आया।

"फिर कभी किसीसे झगड़ा नहीं करेगा?" शांतम्मा बेंत उठाकर रवि को डरा रही थी।

"शांतम्मा!" धर्मय्या गरज उठा।

शांतम्मा ने धर्मय्या की ओर देखा।

"रात के समय बच्चे को मत पीटो, बहन!" धर्मय्या ने समझाया। शांतम्मा रवि के हाथ को ढीला करते हुए बोली, "उफ्! मैं इस लड़के से तंग आ गई हूं। भैया, इसे कहीं गाय चराने क्यों नहीं भेजते? हमें भी शांति मिलेगी!"

"हां-हां, मैंने पहले ही बात कर रखी है।...जमींदार की गायों को चराने के लिए कल से भिजवा दूंगा। कल उनको सौंपकर आऊंगा।" धर्मय्या ने कहा।

यह बात सुनकर रवि को क्रोध आया। बोला, "मैं उनकी गायों को नहीं चराऊंगा। और कोई भी काम कर सकता हूं।"

धर्मय्या को हंसी आ गई, लेकिन उसने रोककर कहा, "देखूंगा,

क्यों नहीं जायगा ? कल मैं तुम्हारी खबर लूंगा, समझे !" इतना कहकर धर्मय्या वहां से चला गया।

शांतम्मा खाट पर लेट गई। रवि बड़ी देर तक खड़ा सोचता रहा। वह राम से जलता है। उसकी गाएं चराना उसे तनिक भी पसंद नहीं। अपमान के भार से दबकर वह मां की बगल में जाकर लेट गया।

पर उसे नींद न आई। थोड़ी देर बाद वह धीरे-से बोला, "मां!"

शांतम्मा कुछ नहीं बोली, आंखें खोलकर उसने रवि को देखा।

"मैं राम की गायों को चराने नहीं जाऊंगा।"

"पर धर्मय्या, मामा नहीं मानेंगे।" यह कहकर उसने करवट बदल ली। धर्मय्या के नाम से उस मुहल्ले-भर के लड़के ही नहीं, बल्कि रवि भी डरता है। रवि का यह विश्वास है कि उनके मुंह से कोई बात निकलती है तो उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। इस आफत से बचाने के लिए रवि जिन-जिन देवताओं के नाम जानता था, मन-ही-मन उन सब की प्रार्थना करते हुए सो गया।

न मालूम बड़े तड़के उठकर रवि कहां भाग गया। शांतम्मा ने पानी से भरी गगरी उतारते हुए देखा, रवि खाट पर नहीं है।

लक्ष्मी लोटा लेकर मुंह धोने चबूतरे पर जा रही थी। शांतम्मा ने उसे पुकारा। लक्ष्मी लोटा चबूतरे पर रखकर शांतम्मा के पास आई।

"रवि कहां गया है, लक्ष्मी ?" शांतम्मा ने पूछा। "मैं नहीं जानती, मामी ! यह मुझसे नहीं बोलता है।" लक्ष्मी के कंठ में व्यथा भरी थी।

"क्यों, किसलिए ?"

"राम से बोलने से उसने मना किया। तुम्हीं बताओ, मामी, एक ही स्कूल में पढ़ते हुए बोले बिना कैसे रह सकती हूं ?" लक्ष्मी के चेहरे पर चिंता की रेखाएं देखकर शांतम्मा को हँसी आ गई, पर उसने रोक ली। लक्ष्मी ने कहा, "मैंने रवि से कहा कि मैं राम से बिना बोले कैसे रह सकती हूं ? इसलिए वह चार दिन से मुझसे बात नहीं करता। नहीं बोलता तो क्या हुआ ? राम तो है मेरे साथ बोलने के

लिए।" इतना कहकर लक्ष्मी जाने लगी। शांतम्मा ने उसे फिर पुकारा, "लक्ष्मी !"

लक्ष्मी शांतम्मा के निकट आकर खड़ी हो गई।

"लक्ष्मी, राम कैसा लड़का है ?" शांतम्मा ने पूछा।

"बड़ा अच्छा लड़का है। मोटर पर अपने घर ले जाकर लड्डू खिलाता है।..." कुछ और कहने को हुई, फिर रुककर बोली, "मामी, एक बार उसने आपकी याद की थी।"

शांतम्मा ने लक्ष्मी को अपने निकट खींच लिया और पूछा, "क्या कहा था ?"

कहा था, "लक्ष्मी, तुम्हारी मामी बड़ी अच्छी हैं।"

शांतम्मा की आंखें भर आईं। लक्ष्मी की समझ में न आया कि राम की खबर से मामी खुश क्यों हो गई है। थोड़ी देर तक वह शांतम्मा की ओर ताकती रही, फिर मुंह धोने चली गई।

रसोई बनाकर शांतम्मा बड़ी देर तक रवि का इंतजार करती रही, मगर वह न आया।

धर्मय्या लक्ष्मी के साथ भोजन करने बैठा तो पूछा, "शांतम्मा, रवि कहां है ?"

देहलीज पर बैठी शांतम्मा ने संक्षेप में उत्तर दिया, "अभी लौटा नहीं है।"

धर्मय्या ने शांतम्मा की ओर देखा। उसके विषादपूर्ण चेहरे को देखकर धर्मय्या ने समझ लिया कि शांतम्मा अपने पुत्र के लिए बड़ी व्यथित हो रही है।

"खाना खाने के बाद मैं उसे ढूंढ़ लाऊंगा, बहन ! तुम चिंता न करो।" धर्मय्या ने कहा।

शांतम्मा को इस बात की चिंता नहीं थी कि वह घर नहीं लौटेगा। उसकी चिंता तो यह थी कि न मालूम वह शाम तक कैसा झगड़ा-टंटा मोल लायगा ! कितनी निंदा सहनी पड़ेगी !

धर्मय्या भोजन समाप्तकर हाथ धोने गया। लक्ष्मी अपने कमरे में

चली गई तभी धर्मय्या के द्वार पर एक गाड़ी आकर रुकी ।

"मास्टरजी!" कहते हुए राम रवि को साथ लेकर आंगन में आ पहुंचा । राम की आवाज सुनकर लक्ष्मी हाथ में किताब लिये दौड़ी-दौड़ी आई ।

"तुम्हारे पिताजी कहां हैं ?" राम ने लक्ष्मी से पूछा ।

"क्या बात है, बेटा ?" हाथ पोंछते हुए धर्मय्या आ खड़ा हुआ ।

घबराई हुई शांतम्मा अपने पुत्र की आवाज सुनकर किवाड़ की आड़ में आ गई ।

"क्या आप रवि को हमारी गायें चराने के लिए भेजना चाहते हैं ?"

"हां, राम, कहा तो था । वह नहीं पढ़ता तो क्या करूं ?" धर्मय्या ने उत्तर दिया ।

"वह पढ़ेगा तो गायें चराने नहीं भेजेंगे न ?" राम ने फिर पूछा ।

"पढ़ेगा तो क्यों भेजूंगा !"

"अच्छी बात है ! रवि कहता है कि कल से वह मन लगाकर पढ़ेगा और मेरे और लक्ष्मी के साथ दोस्ती करेगा । कल रवि को भी स्कूल ले आइये ।" इतना कहकर राम रवि को वहांपर छोड़कर घूम पड़ा । लक्ष्मी ने पुकारा, "राम !"

राम ने ठहरकर देखा ।

"मेरे घर में खाना नहीं खाओगे ?" लक्ष्मी ने पूछा ।

"नहीं ।"

"मेरे घर खाना खाने में कोई बुराई है क्या ?" लक्ष्मी ने दुःख-भरे स्वर में पूछा ।

"मैं नहीं जानता हूं कि बुराई है या नहीं, लेकिन मेरे पिताजी ने मना किया है कि कभी किसीके घर खाना न खाना ।" राम ने कहा । उसकी आंखें चारों तरफ घूम रही थीं ।

शांतम्मा बाहर नहीं आई । उसके मन में इच्छा तो थी कि एक बार राम को देखे, पर यह सोचकर वह रुक गई कि न मालूम धर्मय्या क्या सोचेंगे !

अपने पुत्र को गोद में बिठाकर खाना खिलाने की इच्छा शांतम्मा के मन में बलवती हो उठी ।

राम गाड़ी पर जा बैठा। धर्मय्या भी गाड़ी के पास गया।

"मास्टरजी, सुनिये..." वह कुछ पूछने को था, लेकिन वाक्य के पूरा होने के पहले ही गाड़ी के इंजिन में हलचल हुई और द्वार पर उस प्रशांत मूर्ति को न देखकर वह अपना वाक्य पूरा न कर पाया।

शांतम्मा द्वार पर खड़ी होकर राम को देखती रही। राम भी उसकी ओर देखता रहा। धर्मय्या ने दोनों की ओर देखा। गाड़ी चली गई।

बच्चों के झगड़ों में प्रथम अपराधी का निर्णय करना जितना कठिन है, उनके दोस्त बन जाने पर यह निर्णय करना उतना ही कठिन है कि पहले किसने दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाया है।

हुआ यह कि रवि गांव के छोर पर सड़क के किनारे बैठा कड़ी धूप में गायें चरानेवाले लड़कों को देखकर चिंता के साथ यह सोच रहा था कि आगे गायें चरानेवाला काम उसके लिए कैसा रहेगा। तभी सड़क पर अचानक गाड़ी के रुकने की आवाज सुनकर उसने उस ओर देखा। बड़ी प्रसन्नता से उठ खड़ा हुआ, पर कार के पास जाते ही किसी बात का स्मरण कर ठहर गया और सिर झुकाकर क्रोध-भरी दृष्टि से देखने लगा।

राम ने रवि से बात करनी चाही, लेकिन रवि की निराशा और लापरवाही देख उसने ड्राइवर को आदेश दिया, "चलो, ड्राइवर!"

रवि ने सजल नेत्रों से राम को देखा। राम ने गाड़ी रुकवाकर पूछा, "यहांपर क्यों हो?"

रवि ने मौन साध लिया। राम ने कहा, "गाड़ी में आ जाओ, तुमको घर पर उतार दूंगा।"

रवि ने कभी सोचा तक न था कि अपने शत्रु के मुंह से ऐसे आदर-पूर्ण शब्द सुनेगा। वह चुपचाप गाड़ी में आ बैठा।

गाड़ी की रफ्तार तेज हुई। रवि ने घर छोड़ने और यहांपर बैठने का कारण विस्तार से राम को बताया।

१३ ||

शांतम्मा का मन यह सोचकर हलका हुआ कि वह भले ही स्कूल में जाकर पढ़ाई-लिखाई न करे, कम-से-कम घर पर रहकर झगड़ा तो नहीं करेगा।

स्कूल में जब तब रवि झगड़ा कर बैठता, तो भी राम का स्नेह-भाजन होने के कारण उसका दुष्परिणाम न निकलता था। रात के समय लक्ष्मी मन लगाकर पढ़ने में लग जाती, इससे रवि को थोड़ी तकलीफ जरूर होती। वह किताबें लेकर बैठ जाती और रवि को पढ़ने का आदेश देती। वह इनकार करना चाहता, पर धर्मय्या की याद आते ही चुप-चाप लक्ष्मी के पास जा बैठता। वह मन मसोसकर, खीझते हुए, लक्ष्मी के साथ पढ़ने लगता।

पढ़ाई में रवि लक्ष्मी से हार चुका था। इसलिए एक बार उसने गुस्से में आकर लक्ष्मी के गाल पर जोर से चांटा जमा दिया।

बगल के कमरे में किताब पढ़ते धर्मय्या ने आवाज सुनकर पूछा, "क्या बात है, बेटी ?" लेकिन लक्ष्मी ने कोई उत्तर न दिया। धर्मय्या ने निकट आकर देखा। रवि किताब लेकर दूसरे कमरे में चला गया।

"रवि ने तुमको पीटा है, लक्ष्मी ?" धर्मय्या ने पूछा।

"जोर से नहीं, बाबूजी !" लक्ष्मी ने जवाब दिया। धर्मय्या के वहां से जाते ही रवि पुनः लक्ष्मी के पास आ बैठा।

दूसरे दिन संध्या तक लक्ष्मी ने रवि से बात न की। रात होते ही वह किताबें लाकर उसके पास जा बैठा। लक्ष्मी मौन रही, रवि की ओर नहीं देखा। रवि से रहा न गया, वह बोला, "तुम नहीं बोलोगी तो मैं नहीं पढ़ूंगा !"

"मेरे लिए तुम थोड़े ही पढ़ते हो ?" लक्ष्मी ने मुंह बनाकर जवाब दिया।

थोड़ी देर मौन रहने के बाद रवि ने पूछा, "मैंने तुमको पीटा, इसलिए मुझसे नाराज हो ?"

लक्ष्मी ने कोई जवाब नहीं दिया।

"आइंदा कभी नहीं पीटूंगा, लक्ष्मी !" पश्चात्ताप-पूर्ण स्वर में रवि ने कहा। लक्ष्मी ने उसपर गंभीर दृष्टि डाली। कहा, "तब तो मेरे सबालों का जवाब दो।" यह कहते हुए लक्ष्मी ने पुस्तक में से कई सवाल किये।

आड़ में रहकर धर्मय्या ने उन बच्चों की बातचीत सुनी। वह मन-ही-मन हँस पड़ा।

उस दिन जमींदार गंगाधरराव के घर में बड़ी हलचल थी। राम की वर्षगांठ थी।

सुबह से रवि और लक्ष्मी बहुत ही व्यस्त थे। वैसे दोनों ने कोई काम-धाम तो नहीं किया, परन्तु राम ने गाड़ी भिजवाने का वादा किया था। इसलिए कपड़े बदलने और अपनेको सजाने में लक्ष्मी सारा समय खर्च कर रही थी। रवि बन-ठनकर तैयार बैठा था। लक्ष्मी ने अपने को सजाकर आइने में देखा और रवि से पूछा, "रवि, मैं कैसी लगती हूं ?" लक्ष्मी ने शायद यह प्रश्न छठी बार पूछा था। रवि यह सवाल सुनकर खीज रहा था।

लक्ष्मी के प्रश्न का उत्तर दिये बिना रवि बरामदे में जा बैठा और ठोढ़ी के नीचे हाथ रखकर गहरे सोच में निमग्न हो गया। न मालूम उसके मन में क्या विचार आया। उसने पुकारा, "लक्ष्मी !"

"क्या है, रवि ?" लक्ष्मी ने भीतर से ही पूछा।

"गाड़ी आ गई, जल्दी चलो !" रवि ने कहा।

लक्ष्मी तत्काल बाहर आ गई। जल्दबाजी में लक्ष्मी दूसरी आंख में काजल लगाना भूल गई। रवि हँस पड़ा। वह तालियां बजाने लगा। बाहर से शांतम्मा और धर्मय्या आ पहुंचे।

"यह काजल किसने लगाया है, बेटी ?" धर्मय्या ने हँसते हुए पूछा। लक्ष्मी ने जाकर आइने में देखा। उसे अपनी भूल पर हँसी आ गई। वह मन-ही-मन गुनगुनाने लगी, "मेरी बुद्धि भी कैसी मन्द है !"

लक्ष्मी की गुनगुनाहट सुनकर शांतम्मा जोर से हँस पड़ी। लक्ष्मी ने शांतम्मा की ओर क्रोधभरी दृष्टि से देखा और कहा, "आपके लड़के की वजह से ही भूल गई, मामी!"

शांतम्मा ने लक्ष्मी की आंख में काजल और टीका लगाया।

"लक्ष्मी तुम किससे शादी करोगी?" शांतम्मा ने पूछा।

शादी का अर्थ तो लक्ष्मी जानती ही न थी, फिर भी उस बात को सुनकर लक्ष्मी ने सिर झुका लिया।

"राम से करोगी या रवि से?" शांतम्मा ने फिर पूछा।

"ओह, नटखट रवि से? बाप रे बाप!" लक्ष्मी बोली।

"तो क्या राम से करोगी?" शांतम्मा ने जोर देकर पूछा। लक्ष्मी कुछ सोच ही रही थी कि क्या जवाब दे! इतने में राम की पुकार सुनाई दी।

"लो, गाड़ी आ गई।" यह कहते हुए लक्ष्मी भाग खड़ी हुई।

जमींदार गंगाधरराव ने हर साल की भांति गांव के सब बुजुर्गों को निमन्त्रण भेजा था। जमींदार का महल लोगों से खचाखच भरा हुआ था। बच्चे एक ओर बैठे थे, बड़े लोग दूसरी ओर!

जलपान के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ।

राम सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होकर एक ऊंचे आसन पर बैठा था। उसकी दृष्टि दूर बैठी लक्ष्मी पर केन्द्रित थी। रवि की बगल में बैठी लक्ष्मी मुस्कराते हुए राम को देख रही थी।

नृत्य समाप्त हो गया। उपस्थित अतिथि राम को भेंट दे रहे थे। गंगाधरराव मन्दहास के साथ इन उपहारों की ओर देख रहे थे। उनके निकट धर्मय्या बैठा था।

रवि ने देखा कि बच्चे भी छोटे-छोटे उपहार राम को दे रहे हैं। रवि ने लक्ष्मी से पूछा, "तुम क्या चीज लाई हो?"

"देखो, यह है।" लक्ष्मी ने एक छोटी-सी अंगूठी दिखाई।

"इतनी कीमती चीज देनी है क्या?" रवि ने अपने भोलेपन का परिचय देते हुए पूछा।

"कोई भी चीज दे सकते हैं।" रवि के सवाल का जवाब देकर

लक्ष्मी भेंट देने के मौके का इंतजार करने लगी।

"तुम बड़ी दुष्ट हो।" रवि ने दांत भींचकर क्रोध से कहा। उसकी बात लक्ष्मी की समझ में नहीं आई। वह रवि की ओर देखने लगी।

"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?" रवि ने पूछा।

"क्या सब कोई भेंट देते हैं ?"

"तो तुम क्यों देती हो ?"

"बाबूजी ने सोने की अंगूठी बनवाई और देने को कहा। इसलिए देती हूं।"

लक्ष्मी राम की ओर देखती रह गई।

रवि का मन अशांत था। उसने सबकी ओर देखा। सब कोई-न-कोई चीज दे रहे थे।

"लक्ष्मी !" रवि ने कहा।

लक्ष्मी ने रवि की ओर देखा। उसका चेहरा अपमान के मारे मलिन हो गया था। देखने में भयंकर लगता था।

"तुम्हारे पास पैसे हैं ?"

"एक चवन्नी है, रवि !"

"दे दो !" रवि ने हाथ बढ़ाया। लक्ष्मी ने डरते हुए उसकी हथेली पर चवन्नी रख दी। रवि चवन्नी लेकर बाजार की ओर दौड़ा। उसे डर था कि उसके लौटने तक कहीं सब चले न जायं ! तेजी से दौड़ने के कारण वह एक पत्थर से टकरा गया। गिर पड़ा। उसके कपड़े धूल से भर गये। तभी एक चाकू बेचनेवाला लंगड़ा आदमी उस ओर से निकला। उसने रवि को उठाया। रवि की निगाह चाकुओं पर पड़ी। उसे लक्ष्मी की बात याद आई कि कोई भी चीज़ भेंट में दी जा सकती है। बड़ी प्रसन्नता से चाकुओं को देखते हुए रवि ने पूछा, "एक चाकू का क्या दाम है ?" चाकूवालें ने तीन किस्म के चाकू दिखाते हुए उनके भाव बताये। "इसका दाम एक रुपया है, यह अठन्नी का है और यह चवन्नी का।"

उसने चवन्नीवाला चाकू हाथ में लेकर उसकी जांच की। उसे वह अच्छा लगा। बोला, "मैं इसे लिये लेता हूं।"

"पैसे ?" चाकूवाले ने हाथ बढ़ाया।

रवि ने जेब में हाथ डाला। लक्ष्मी की दी हुई चवन्नी नहीं थी। उसका चेहरा फक पड़ गया।

"क्या मैंने तुमको चवन्नी नहीं दी ?" रवि ने शंकाभरे स्वर में चाकूवाले से पूछा।

"वाह, कब दी ?" चाकू वाला हँस पड़ा। फिर मुंह बनाकर बोला, "चाकू वापस करो।"

"मैं नहीं दूंगा !" दृढ़ स्वर में उत्तर देकर रवि जमींदार के घर की ओर दौड़ पड़ा।

चाकूवाला लगड़ा था। वह उसका पीछा नहीं कर सका। लड़के के व्यवहार पर उसे आश्चर्य हुआ। उसने वहींपर खड़े हो जमीन की ओर देखा। रवि जहां गिरा था, वहीं धूल में चवन्नी चमक रही थी। लंगड़े ने उसे हाथ में लेकर कहा, "वाह, कैसा तेज लड़का है !"

रवि जमींदार के घर पहुंचा, तबतक बहुत-से लोग चले गये थे। राम वहींपर बैठा था। लक्ष्मी थोड़ी दूर पर खड़ी थी।

"राम, अभी खरीदकर लाया हूं !" विजय के गर्व से यह कहते हुए रवि ने वह चाकू राम के हाथ में दे दिया।

उस चाकू को देखकर वहांपर बैठे सब लोग हँस पड़े। राम भी अपनी हँसी को रोक न पाया। रवि समझ नहीं सका कि बात क्या है ! वह विस्मय के साथ सबको देखता रहा।

"तुम किसके लड़के हो ?" जमींदार की गंभीर कंठ-ध्वनि सुनकर सबने उस ओर देखा। रवि ने जमींदार की ओर देखा, लेकिन जवाब नहीं दिया।

"तुम्हारा नाम ?" जमींदार ने फिर पूछा।

"रवि।" संक्षेप में उत्तर देकर रवि ने सिर झुका लिया।

यह नाम सुनते ही जमींदार स्तम्भित रह गये। धर्मय्या भी धीरे-से वहां आ पहुंचा।

"धर्मय्याजी, यह लड़का..." जमींदार कुछ पूछना चाहते थे, पर पूछ नहीं पाये।

"मेरा भानजा है !" धर्मय्या ने शांत स्वर में उत्तर दिया। यह बात सुनकर जमींदार को और भी आश्चर्य हुआ।

"तुम्हारी बहन का नाम क्या है ?"

"शांतम्मा।"

जमींदार आगे कुछ न कह सके। शंका की निवृत्ति के पूर्व उनके दिल में जो घबराहट और आश्चर्य था, वह अब नहीं रहा। म्लान हँसी हँसते हुए बोले, "इस शुभ अवसर पर इस लड़के ने चाकू क्यों भेंट किया ?"

"बेचारा नहीं जानता कि कौन-सी चीज भेंट देनी..." धर्मय्या के वाक्य के पूरा होने के पहले ही गंगाधरराव हँस पड़े।

"बात भले ही मालूम हो, लेकिन जबतक इसको गुप्त रखने की शक्ति आप रखेंगे, तबतक आप और यह लड़का सुखी जीवन बितायंगे। अच्छा।" ये शब्द कहते हुए गंगाधरराव ने धर्मय्या की पीठ थपथपाई और राम को साथ लेकर भीतर चले गये।

जमींदार की बातें वहांपर उपस्थित लोगों को असंगत और अर्थ-हीन प्रतीत हुईं, लेकिन उनमें कैसा जहरीला सत्य छिपा हुआ है, इसे केवल जमींदार और धर्मय्या ही जानते थे।

रवि और लक्ष्मी को लेकर धर्मय्या घर लौट आया।

१४ ||

आठ वर्ष बीत गये। इस बीच धर्मय्या के परिवार में अनेक परि-वर्तन हुए। नौकरी छूटे दो वर्ष पूरे होने को हैं। लक्ष्मी सयानी होकर विवाह के लिए घर पर बैठी हुई है। धर्मय्या के हाथ एक कौड़ी भी नहीं है। शांतम्मा के पास जो कुछ था, उससे एक वर्ष कट गया। अब शांतम्मा के हाथ भी खाली हो गये।

रवि बड़ा हो गया है। उस पाठशाला में आठवीं कक्षा तक पढ़ाई

की व्यवस्था थी। रवि और लक्ष्मी ने आठवीं कक्षा पूरी करके धर्मय्या के साथ स्कूल से छुट्टी ले ली।

धर्मय्या और शांतम्मा सगे भाई-बहन की तरह रहते आये। इसलिए उस परिवार की जिम्मेदारी रवि पर आ पड़ी।

नौकरी करके परिवार का बोझ संभाल सकने की विद्या रवि को प्राप्त न थी। इसलिए एक साल तक वह कई नौकरियां बदलता रहा और जैसे-तैसे परिवार को संभालता रहा।

पहले वह एक दर्जी के यहां काम करने लगा। वहांपर उसका काम दुकान से नाश्ता लाना था।

एक बार खीजकर उसने कॉफी का फ्लास्क मेज पर पटक दिया। कॉफी के गिरने से सिलाई के लिए रखे कपड़ों पर दाग पड़ गए। दर्जी ने नाराज होकर उसके गाल पर थप्पड़ मार दिया। रवि ने आव देखा न ताव, कैंची हाथ में लेकर ललकारते हुए कहा, "ठहरो, नहीं तो तुम्हारा खून पी जाऊंगा।" दर्जी मुँह बाये ताकता रहा।

"मैं काम सीखने के लिए तुम्हारे पास आया था, काफी ढोने के लिए नहीं!" इतना कहकर रवि वहां से चल दिया।

कुछ दिन वह बढ़ई का काम करता रहा। उसे रोज एक रुपया मजूरी का मिलता था। एक महीना पूरा हुआ। मिस्त्री ने रवि के हाथ में साढ़े बाईस रुपए रख दिये।

"बाकी साढ़े सात रुपये कहां हैं?" रवि ने पूछा। उसके साथी उसकी हिम्मत देखकर चकित रह गये।

"बाकी रुपये मेरे कमीशन के हैं।" मिस्त्री ने हँसते हुए जवाब दिया।

"कमीशन किसलिए?" रवि ने पूछा।

"मैंने मेहनत उठाकर तुमको काम नहीं सिखाया?"

"मैंने भी बहुत [illegible]ों से मेहनत करके तुमको सैकड़ों रुपये कमा दिये हैं। मैं अपनी गाढ़ी [illegible] माई तुम जैसे बदमाश और कामचोरों को नहीं दे सकता। मेरे रुप[illegible] [illegible]ो।" रवि गरज उ[illegible]

मिस्त्री ने [illegible] चाप साढ़े सात रुपये [illegible] के हाथ पर रख दिये और

बोला, "अब तुमको काम पर आने की जरूरत नहीं है

रवि लापरवाही से हँसता हुआ चला आया।

फिर उसे एक कारखाने में नौकरी मिल गई। उसकी स्पष्टवादिता देखकर कुछ कर्मचारियों ने सोचा कि वह बड़ा घमंडी है। लेकिन ज्यों-ज्यों उसके निर्मल हृदय का उन्हें परिचय मिलता गया त्यों-त्यों वे उसके घनिष्ठ मित्र बनते गये।

रवि हर महीने सौ रुपये लाकर मां को दे देता। वह परिवार अब बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने काम चलाने लगा। धर्मय्या यह सोचकर रवि को आशीष देता कि अगर रवि न होता तो सारा परिवार दाने-दाने के लिए तरस जाता।

धर्मय्या में दस साल तक और नौकरी करने की शक्ति व उत्साह है। फिर भी दो साल पूर्व अचानक उसको नौकरी से हटाने का क्या कारण है, वह समझ गया था। पर वह यह बात शांतम्मा के सामने प्रकट करके उसे दुखी करना नहीं चाहता था। इसलिए वह सदा चुप रहा करता था।

शांतम्मा धर्मय्या की नौकरी के छूटने का वास्तविक कारण तो नहीं जानती थी, लेकिन उसने भांप लिया कि हो-न-हो, उन्हींके वास्ते धर्मय्या ने अपनी नौकरी का त्याग किया है।

धर्मय्या के निस्स्वार्थ और परोपकारी स्वभाव पर शांतम्मा मुग्ध थी। इसीलिए उसने अपना सारा धन उस परिवार के खर्च में लगा दिया था। वह जिन्दगी-भर उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व वहन करना चाहती थी।

कोई यह नहीं कह सकता कि जमींदार गंगाधर क्रूर, स्वभाव का है। लोग कहते हैं कि वह गंभीर स्वभाववाला तथा परोपकारी है। परंतु यदि कोई कहे कि दो साल पूर्व धर्मय्या को नौकरी से हटाने में जमींदार ने गलत कदम उठाया तो कहना होगा कि यह गलती उसकी नहीं, बल्कि धर्मय्या की है।

एक दिन राम देरी से घर पहुंचा। जमींदार ने कारण पूछा।

"मैं अभी तक मास्टरजी के घर पर ही रहा, पिताजी!" राम ने

उत्तर दिया। गंगाधर राव नहीं जानता था कि किस चीज से आकर्षित होकर राम धर्मय्या के घर जाता है, लेकिन उसने कल्पना की कि धर्मय्या राम को अपनी असली माता का परिचय दिलाने के लिए यह षडयंत्र रच रहा है, इसीलिए शांतम्मा उस गांव में स्थायी रूप से रहने लगी है।

"वहां बार-बार जाना उचित नहीं है, बेटा !" जमींदार ने सुझाया। राम ने आश्चर्य के साथ अपने पिता की ओर देखा और विनयपूर्ण स्वर में पूछा, "क्यों, पिताजी ?"

जमींदार ने व्यथापूर्ण हँसी हँस दी और अपना मुंह मोड़ लिया। उस हँसी में कैसी शक्ति थी, पता न था। पर राम स्तम्भित होकर थोड़ी देर देखता रह गया, फिर भीतर चला गया। उसके हृदय में गुप्त रूप से सुरक्षित भावना को पिताजी कैसे भांप गये, यही उसके भय और विस्मय का कारण था।

राम का विचार था कि लक्ष्मी के प्रति उसके हृदय में जो प्रेम है, वह किसीपर प्रकट न हो जाय। बचपन से उनके दिलों में परस्पर जो स्नेह-लता फैलती गई, वह अवस्था के बढ़ने के साथ अनुराग-लता के रूप में परिवर्तित हो दृढ़ता के साथ इस तरह हृदय से लिपट गई कि राम दिन में कम-से-कम एक बार लक्ष्मी को देखे बिना नहीं रह पाता था। प्रतिदिन नियमपूर्वक मास्टरजी के घर जाता, किसी किवाड़ की आड़ में खड़ी लक्ष्मी को एक बार देख लेता और संतुष्ट होकर घर लौट आता।

दूसरे दिन गंगाधर राव ने धर्मय्या को बुला भेजा और उसे अपने विश्राम-कक्ष में ले गये।

"धर्मय्याजी, मैंने अनेक लोगों की सहायता की है, परंतु मैंने कभी किसीसे सहायता की अभ्यर्थना नहीं की। आप जानते हैं न ?" गंगाधर राव ने हठात प्रश्न किया।

धर्मय्या सोचने लगा कि इस सवाल में कोई व्यंग्य छिपा हुआ तो नहीं है !

"आपको मेरी एक मदद करनी है।" यह बात कुछ ऊंची आवाज में सुनाई दी। धर्मय्या को लगा कि इस अभ्यर्थना में याचना का भाव नहीं है, वरन हठ है।

"आज्ञा दीजिए।" धर्मय्या ने नम्रतापूर्वक कहा।

"आपके घर में रहनेवाली शांतम्मा..."

इतना कहकर गंगाधर राव चुप हो गये और धर्मय्या के चेहरे के भावों को पढ़ने का प्रयत्न करने लगे।

धर्मय्या के भाल की रेखाओं में एक साथ डर और आश्चर्य प्रस्फुटित हुए।

"क्या वह सचमुच आपकी बहन है?"

"रिश्ते में वह बहन जरूर है, पर वह दूर का रिश्ता है।"

जमींदार हँस पड़े। उस हास्य में क्रोध का पुट था।

"धर्मय्याजी, आपकी बातों में चालाकी है!"

इन बातों में चालाकी की गंध के लिए स्थान कहां है, धर्मय्या सोचने लगा।

"आपने एक बार कहा था कि शांतम्मा आपकी सगी बहन है।" जमींदार ने व्यंग्यपूर्वक सिर की हरकत करते हुए पूछा।

धर्मय्या ने 'सगे' शब्द का प्रयोग कभी किसीके विषय में नहीं किया था, यहांतक कि बचपन में रवि ने जब राम को चाकू भेंट किया था, तब भी उसने यह शब्द नहीं कहा था।

"मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी आपको सगी बहन बताई है।"

"तो पराई नारी के प्रति यह जिम्मेदारी क्यों लिये बैठे हैं?"

"क्योंकि वह पूर्ण रूप से पराई नहीं, उल्टे वह पति-विहीना..."

धर्मय्या कुछ और कहने जा रहा था कि झट गंगाधर राव ने कहा—"आप पत्नी-विहीन हैं।"

धर्मय्या का चेहरा सफेद पड़ गया। फिर देखते-देखते क्रोध से लाल हो उठा। जमींदार ने भांप लिया कि उसके कथन में असत्य है। धर्मय्या के नैतिक बल से परिचित होकर भी ये शब्द कहने के कारण जमींदार मन-ही-मन पछताने लगे।

"आप कृपया अन्यथा न सोचिए। आपका हृदय पवित्र है, मैं अच्छी तरह से जानता हूँ।... लेकिन एक विधवा नारी को घर में स्थान देने से समाज क्या सोचेगा?" जमींदार ने प्रश्न किया।

"आपके मन में ऐसा विचार पैदा हुआ, इसका मुझे दुख है। लेकिन मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि जो व्यक्ति मेरे स्वभाव से परिचित हैं, वे कभी ऐसी बात पर विश्वास नहीं करेंगे।" धर्मय्या ने दृढ़ता के साथ कहा।

सरल शब्दों में दिया गया धर्मय्या का उत्तर जमींदार के हृदय पर लोहे की शलाख-सा लगा।

जमींदार उठ खड़े हुए। टहलते हुए बोले, "मुझे इस बात का दुख नहीं है कि मैं आपकी दृष्टि में जल्द दूसरों पर दोषारोपण करने वाला हूं। परन्तु यह सोचकर मैं चिंतित हूं कि उम्र के ढलते-ढलते शिक्षकों का मस्तिष्क दुर्बल क्यों हो जाता है।...अच्छी बात है! मैं मान लेता हूं कि आपका हृदय साफ है। लेकिन मैं पूछता हूं कि जब शांतम्मा आपकी सगी बहन नहीं है, तब उसे अपने घर में रखने की क्या जरूरत थी?"

जमींदार जैसी बातें कर रहे थे, उनसे स्पष्ट था कि उनका हृदय संकुचित है। ५० साल की उम्र में ही अगर शिक्षकों का दिमाग कमजोर या खराब हो जाता है, तो ५५ साल के जमींदार दुनिया-भर की जिम्मेदारियों के बोझ को अपने सिर पर उठाये हुए हैं, ऐसी हालत में उनका दिमाग पूर्णरूप से खराब होना चाहिए था।

लेकिन ऐसा तो नहीं हुआ, यही शंका धर्मय्या के दिल को कुरेदने लगी।

"आपकी बातें मेरी समझ में नही आ रही हैं।" कहते हुए धर्मय्या उठ खड़ा हुआ।

"समझ में नहीं आयंगी। यह मैं जानता हूं। लेकिन यह न भूल जाइए कि मैं आपकी भलाई की ही बात कह रहा हूं।" जमींदार के कंठ में आवेग था।

यह वाद-विवाद कोई सुनता तो उसे आश्चर्यजनक प्रतीत होता। जमींदार फल को पत्तों के बीच सुरक्षित रहने देकर मोटी डाल पर पत्थर फेंक रहे हैं। डाल निश्चल है, उसका आघात फल पर नहीं हो रहा है। शायद फल को यह भी मालूम नहीं कि उसे गिराने के लिए एक

बलिष्ठ व्यक्ति जी-तोड़ प्रयत्न कर रहा है।

नुकीले पत्थरों के प्रहार से डाल पर आघात हुए बिना नहीं रह सकता। परंतु वह पेड़ उस फल की रक्षा के लिए सभी प्रकार के आघात सहने को तैयार है, जिस फल को उसने जन्म देकर पोषित किया है।

"शांतम्मा को अपने घर से निकाल देने में आपको कोई आपत्ति है ?" जमींदार ने पूछा।

"बिना किसी प्रकार के अपराध के मैं उस साध्वी को घर से निकालने का पाप क्यों करूं ?" धर्मय्या की वाणी में दृढ़ता थी।

धर्मय्या के उत्तर से जमींदार की त्योरियां चढ़ गईं, "मैं आदेश देता हूं कि आपको अपने घर से शांतम्मा को निकाल देना होगा।" जमींदार ने आज्ञा दी।

धर्मय्या ने जमींदार की ओर देखा। उसके चेहरे में जो भाव प्रस्फुटित थे, ऐसे भाव आजतक जमींदार ने नहीं देखे थे।

"आपके दिल को चोट पहुंची है ?" जमींदार ने पुनः पूछा।

"जरूर पहुंची है, क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूं कि शांतम्मा को घर से न निकाल देना मेरी जिम्मेदारी है !"

"धर्मय्या !" जमींदार ने आंखें लाल-पीली करके कहा।

"जीहां, धर्मय्या अधर्म का आश्रय कभी नहीं ले सकेगा !"

इतना कहकर धर्मय्या जाने को हुआ।

"धर्मय्याजी, पुराने उपकार को भूल जाना अगर इंसान का धर्म है तो आपके 'धर्मय्या' नाम में भी यही अर्थ भरा हुआ है !..."

"मैं आपके उपकार को भूल नहीं सकता। कोई जबर्दस्ती भुलाना भी चाहेगा तो वह दिल में एक गांठ बनकर हलचल मचा देगा। क्षमा कीजिए ! मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। लेकिन मैं आपके उद्देश्य से परिचित हूं, इसलिए आपके विचारों के विरुद्ध मैं वह रहस्य कभी प्रकट नहीं करूंगा। आज्ञा दीजिए।" इन शब्दों के साथ धर्मय्या वहां से चला गया।

दूसरे दिन ही धर्मय्या के नाम पत्र मिला। उसमें लिखा था, "आपकी अवास्था पचास साल की हो गई है। आपका मन स्थिर नहीं

है। २५ वर्ष तक नौकरी करने के बाद आपको विश्राम करने का मौका देना पाठशाला के अधिकारियों का कर्तव्य है। इसी विश्वास के साथ हम आपको नौकरी से स्वेच्छापूर्वक त्याग-पत्र देने की सलाह देते हैं।"

इस पत्र को देखकर धर्मय्या को आश्चर्य नहीं हुआ। किसका दिमाग खराब हो गया है, स्वयं भगवान जानते हैं। धर्मय्या ने जमींदार की मेधा की मन-ही-मन स्तुति की। उसने सोचा, बुद्धि नामक पदार्थ उपकार करने में जैसे काम देता है, वैसे ही अपकार करने में भी काम कर सकता है।

यह घटना ठीक दो साल पूर्व घटी थी। उस समय राम कालेज में प्रथम वर्ष में पढ़ता था। पिता के द्वारा यह समाचार सुनने के बाद उसने धर्मय्या के घर जाना छोड़ दिया था, लेकिन कहीं-न-कहीं लक्ष्मी से भेंट हो जाती थी।

धर्मय्या की नौकरी छूट जाने पर राम को दुःख हुआ, लेकिन अपने पिताजी से कहकर फिर से उनको नौकरी दिलाने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

१४ ||

रवि के व्यवहार में जो परिवर्तन हुआ, उससे सारे परिवार के लोग परिचित थे, परन्तु उसकी गंभीरता को देखकर कोई उससे खुलकर बात नहीं कर पाता था।

एक दिन रवि देर से खाने के लिए आया। लक्ष्मी धर्मय्या के फटे कुर्ते को सी रही थी। शांतम्मा चश्मा पहने भगवद्गीता का पाठ कर रही थी।

"बड़ी देरी हो गई, बेटा!" पुस्तक बंद करते हुए शांतम्मा ने कहा।

"हां, देरी हो गई!" जवाब देकर रवि ने कमीज उतारी और भोजन करने गया।

शांतम्मा ने खाना परोसा। रवि आतुरता के साथ भोजन करने लगा।

"रविवार को भी देरी से आते हो?" शांतम्मा ने पूछा।

रवि ने सिर उठाकर अपनी मां की ओर देखा।

"ज़रा धीरे-से तो खाओ, बेटा!" शांतम्मा ने धीमी आवाज में कहा।

"दही दो, मां।" रवि ने कहा।

भोजन समाप्त करके वह बैठक में आया। हाथ धोते हुए कुर्ता सीती लक्ष्मी की ओर ध्यान से देखते हुए खड़ा रह गया।

"परसों तुम्हारे पिता का श्राद्ध है, बेटा!" शांतम्मा ने याद दिलाया।

"तो?" घूमकर रवि ने कहा।

"एक ब्राह्मण को बुलाना है।" शांतम्मा बोली।

"इन अंधविश्वासों पर मुझे हँसी आती है, मां!" रवि ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। उसके मुंह से पहली बार ऐसे शब्द निकले थे।

शांतम्मा स्तब्ध हो खड़ी रह गई। लक्ष्मी ने रवि की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा।

"अन्धविश्वास?" शांतम्मा ने दुहराया।

"हां-हां! परलोक में रहनेवाले पिताजी की आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए इन ब्राह्मणों की तोंद भरनी है, यही तुम कहती हो न?...हूं...परलोक...आत्मा..." तिरस्कारपूर्वक ज़ोर देते हुए रवि ने ये शब्द दुहराये और कमीज़ पहनने लगा।

"तुम्हारी दृष्टि में भगवान भी कुछ नहीं होता!" लक्ष्मी ने व्यंग्य किया।

"हो तो क्या तुम दिखा सकती हो?" रवि ने पूछा।

शांतम्मा रुककर रवि को ताकने लगी, पर उसने कोई समाधान नहीं किया। लक्ष्मी जानती थी कि यह प्रश्न पूछना जितना कठिन है,

उतना ही कठिन उसका उत्तर देना भी है।

शांतम्मा ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "रवि !"

ड्योढ़ी पार करते-करते रवि लौट आया।

"मेरे मरने के बाद भी तुम ऐसा ही करोगे न ?" शांतम्मा का कंठ अवरुद्ध हो उठा।

रवि को यह समझते देर न लगी कि उसने बड़ी सरलता से जो बात कही, उससे शांतम्मा का दिल कैसे तड़प उठा। लेकिन उसने यह नहीं समझा कि हिन्दू परिवारों में पुत्र को कैसी प्रधानता दी जाती है और ज़िन्दगी-भर अपनी सन्तान के पालन-पोषण में नाना प्रकार की यातनाएं सहकर, उनके बड़े होने पर, उनसे दूषण और तिरस्कार पाया जाता है। यह सब इसलिए कि उनके मरने के बाद पुत्र श्राद्ध-कर्म करेंगे।

रवि हँस पड़ा और अपनी मां के निकट बैठते हुए बोला, "मां, दुखी क्यों होती हो ?"

शांतम्मा ने आंखें पोंछ लीं।

"बेटा, सच बताओ, भगवान पर तुम्हारा विश्वास नहीं है ?"

"पहले था, लेकिन अब नहीं है !"

"इसका क्या कारण है ?"

"क्योंकि मैंने सत्य को समझ लिया है !"

शांतम्मा क्रोध में आकर उठ खड़ी हुई। वह भीतर जाने लगी। रवि ने पुकारा, "मां !"

"तुम-जैसा नास्तिक मेरी कोख से पैदा हुआ, इसके लिए भगवान मुझे कोई दण्ड दे तो मैं भोग लूंगी। चले जाओ।" ये शब्द कहते हुए शांतम्मा अन्दर चली गई।

रवि को अपार विस्मय हुआ। इस बात का उसे थोड़ा मानसिक दुख भी हुआ कि उसकी मां भगवान पर गहार विश्वास रखती है। रवि ने समझ लिया था कि आध्यात्मिकता तथा आस्तिकता की गलत धारणा से भारत का कैसा पतन हुआ है। यह भी उसने समझा कि ऐसे अन्धविश्वासों को समूल उखाड़ फेंकने की जिम्मेदारी युवकों पर है।

रवि अपनी मां के पास जाकर चारपाई पर बैठ गया। शांतम्मा ने

उसकी ओर देखा, लेकिन कुछ कहा नहीं।

"तुम नहीं जानती हो, मां! भगवान के नाम पर हमारे देश और जनता को कैसे दगा दिया गया है।" रवि ने शांत स्वर में कहा।

शांतम्मा ने रवि की ओर देखा। उस दृष्टि में यह प्रश्न छिपा हुआ था, "किसने दगा दिया है!" पर रवि समझ न पाया।

"भाग्य के नाम पर गरीबों का पेट काटकर..."

"ठहरो..." शांतम्मा चिल्ला उठी।

रवि मौन रह गया।

"मैंने तुम्हारे बाबूजी के श्राद्ध के बारे में कहा था, लेकिन भाषण सुनने की इच्छा प्रकट नहीं की थी, समझे? अब तुमसे कुछ भी कहना नहीं है, तुम चले जाओ!"

रवि चारपाई से उठा। "मूर्खों को बदलना मुश्किल है।" मन-ही-मन उसने कहा।

शांतम्मा ने क्रोध से देखा। उसे इस बात का दुख था कि उसका लड़का शब्दों का अर्थ तक भूलकर कैसे बकता है। फिर शांत होकर बोली, "मुझे कुछ नहीं कहना है।"

मां के भाव से नाराज होकर वह गरज उठा, "भगवान कहां पर है? न्याय कहां है? जी तोड़ मेहनत करनेवालों को रोटी नहीं मिलती। धोखेबाज गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।..." रवि की आंखों में आवेश था, जिसे शांतम्मा ने भांप लिया। परन्तु उसने रवि को नीच नहीं माना। उसके हृदय में गरीबों की आहों और दुष्टों के अत्याचारों के बीच संघर्ष होने लगा। सत्य कौन है! यही उसका अन्वेषण था।

"मानवों की चेष्टाओं के उत्तरदायी भगवान नहीं हो सकते, रवि। तुम सत्य ही भगवान को देखोगे तो विश्वास करने की स्थिति में नहीं हो।" शांतम्मा ने समझाया।

रवि को आश्चर्य के साथ क्रोध भी आया। "विश्वास नहीं करता, नहीं तो उनकी चोटी पकड़कर पूछूंगा—तुम्हारे शासन में न्याय के लिए दण्ड क्यों दिया जाता है? भले आदमी, मेहनती खाने के लिए क्यों तरसते हैं और धोखेबाज तथा आलसी क्यों मौज उड़ाते हैं?"

शांतम्मा अपनी हँसी रोक न पायी। धर्मय्या भी आ पहुंचा और रवि के आवेश को देखकर जड़वत् खड़ा रह गया।

"हँसती क्यों हो, मां!" रवि ने पूछा। धर्मय्या को देखकर वह सीधे बैठक में गया। लक्ष्मी ड्योढ़ी पर खड़ी थी।

"रवि!" लक्ष्मी ने पुकारा।

"गुड़ कैसा होता है?"

"मीठा।"

"मीठा माने...?"

"माने क्या?"

"उसका आकार और स्वाद...?"

"मेरी समझ में नहीं आता।"

"भगवान भी तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा, समझे!" लक्ष्मी ने हँसते हुए कहा।

वह भीतर चली गई, पर रवि इस प्रश्न को समझने की कोशिश करते थोड़ी देर खड़ा रहा। फिर बाहर चला गया।

कमरे में बैठे धर्मय्या और शांतम्मा रवि और लक्ष्मी का वार्तालाप सुन रहे थे।

शांतम्मा ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "भैया, मैंने कभी नहीं सोचा था कि रवि यों बदल भी जायगा। शायद वह बिगड़ गया है।"

"क्यों?" धर्मय्या ने पूछा।

"भगवान पर उसका रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है।" शांतम्मा ने अपना संदेह प्रकट किया।

धर्मय्या हँस पड़ा।

"बहन, यह सोचकर कि हमें कोई शक्ति चला रही है, इसलिए आंखें बंद करके हम आगे बढ़ें तो पाप-रूपी गड्ढे तथा पुण्य-रूपी टीले का हम परिशीलन नहीं कर पायंगे, उल्टे कभी-न-कभी हम गहरी घाटी में गिर जायंगे। ऐसा न होकर आंखें खोलकर कदम बढ़ायंगे तो ऊबड़-खाबड़ स्थान का हमें स्पष्ट पता चलेगा और हम सही रास्ते पर चलेंगे। मैं भगवान पर विश्वास करता हूं, परन्तु उन्हें मैंने कोई रूप नहीं दिया।

मैं अपने अनेक वर्षों के अनुभव से यह कह सकता हूं कि अंधविश्वास रूपी आस्तिकता के बदले नास्तिकता सब प्रकार से उत्तम कही जा सकती है। हम भले ही भगवान के अस्तित्व के संबंध में तर्क करें, तो भी जो लोग सत्य व धर्म की स्थापना के लिए व्यथित हैं, प्रयत्नशील हैं, उन्हें भगवान अवश्य क्षमा करते हैं। क्षमा ही नहीं करते, वल्कि अपूर्व शक्ति प्रदान करते हैं। लेकिन जो लोग भगवान पर विश्वास करते हुए पूजा-अर्चना करते हैं और अपनी भूल को उनपर थोप देते हैं, उन्हें वे कभी क्षमा नहीं करते।" धर्मय्या ये शब्द कह कर चला गया।

शांतम्मा का दिल हल्का हो गया सामने भगवान कृष्ण के चित्र को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए शांतम्मा बोली, "भगवान, अज्ञान में पड़े तथा ज्ञान के घमण्ड में चूर लोगों को भी समान रूप से क्षमा करो।"

संध्या का समय था। एक सप्ताह बाद राम धर्मय्या के घर पहुंचा। दीपक जलाकर दीयादान पर रखते हुए लक्ष्मी ने देखा कि कोई द्वार पर खड़ा है। वह देखती रह गई।

"लक्ष्मी!" राम ने पुकारा।

जवाब दिये बिना लक्ष्मी अन्दर चली गई। राम को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह जानता था कि कई दिन बाद आने से लक्ष्मी यही करती है। वह सीधे लक्ष्मी के कमरे में गया।

"मास्टरसाहब कहां हैं?" सारे कमरे में अपनी दृष्टि दौड़ाने के बाद राम ने पूछा।

"मंदिर गये हैं।" लक्ष्मी ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"इतने दिनों से..." उस ध्वनि में क्षोभ भरा था।

"तुम नहीं जानतीं..."

"क्या?"

"परीक्षाएं चल रही थीं न! तुम्हारी मामी कहां हैं?"

"रसोई वना रही है।"

राम कुर्सी पर वैठ गया। लक्ष्मी खड़ी रही। उन दोनों के मन में निस्तब्धता छायी हुई थी।

लक्ष्मी ने एक गहरी सांस ली। राम ने उस ओर देखा।

"मांमी को बुलाऊं ?" लक्ष्मी ने कहा।

"कोई जरूरत नहीं।" राम ने जवाब दिया।

राम यह समझ नहीं पाया कि एक कमरे में युवती और युवक का एकांत में रहना सन्देह का कारण बन जाता है। लक्ष्मी धीरे-से खिसककर बैठक में आ गई।

"जाती क्यों हो ?" राम ने पूछा।

"तो काम ही क्या है ?" लक्ष्मी ने उपेक्षा-भरी आवाज में उत्तर दिया।

राम समझदार जरूर है, परन्तु पराधीन है, यह लक्ष्मी भी जानती है।

इतवार का दिन था। इसलिए रवि जल्दी ही घर लौटा। घर में कदम रखते ही सामने लक्ष्मी दिखाई दी।

"रवि !"

रवि लक्ष्मी की आवाज सुनते ही कमरे में आया। वहां राम दिखाई दिया। राम ने सोचा कि रवि प्रसन्नता के साथ उसके पास आयगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। रवि ने राम से कुशल-क्षेम तक नहीं पूछा। वह सीधा घर के अन्दर चला गया।

राम ने आश्चर्य के साथ देखा। वह भी बैठक में आया।

"लक्ष्मी ! रवि मुझसे बात क्यों नहीं करता ?" राम ने पूछा।

"शायद सुनाई नहीं दिया हो।" लक्ष्मी ने कहा।

"बहरा तो नहीं है न"

"मैं नहीं जानती !" लक्ष्मी इतना कहकर वहां से चली गई। राम वहीं खड़ा होकर सोचता रहा।

रवि में इस परिवर्तन का कारण राम समझ न पाया। रवि के मन में धनिक वर्ग के प्रति गहरी उदासीनता व्याप्त थी।

वह नहीं जानता है कि उसका बचपन का दोस्त राम उसीका सगा भाई है, परंतु वह राम में कोई दो पी नहीं दिखा सकता है कि धनी परिवार का पुत्र होने पर भी उसने कोई भूल की हो।

"मामी बुला रही है!" लक्ष्मी की ये बातें सुनकर राम भारी कदम बढ़ाते कमरे में पहुंचा।

"क्यों बेटा, कब आये?" पिछवाड़े के द्वार पर खड़ी शांतम्मा ने प्रसन्न स्वर में पूछा।

"अभी-अभी, आया हूं।" संक्षेप में राम ने उत्तर दिया। उसकी दृष्टि मेज पर पड़ी। 'भौतिकवाद', 'अर्थशास्त्र' नामक दो किताबें दिखाई दीं, जिन्हें चन्द मिनट पहले रवि ने लाकर रख दिया था।

"ये किताबें किसकी हैं?" राम ने पूछा।

"रवि अभी-अभी लाया है।" लक्ष्मी ने जवाब दिया।

राम ने एक पुस्तक हाथ में लेकर उलटना शुरू किया।

"ये किताबें तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं हैं!" रवि ने राम की ओर देखते हुए कहा।

राम बोला, "लेखकों का उद्देश्य शायद यह नहीं है!"

"मैंने पढ़ा है, इसलिए मेरा यही उद्देश्य है।" यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तौलिया पहनकर वह स्नान करने चला गया।

"रवि काफी बदल गया है।" यह कहकर राम ने पुस्तक मेज पर रख दी और कहा, "मां! मैं चला।"

"उसका स्वभाव तुम जानते हो, बेटा! बुरा न मानो!" शांतम्मा ने स्नेह से कहा।

"रवि नहीं जानता है कि स्नेह और मर्यादा क्या चीजें हैं।..." इन शब्दों के साथ शांतम्मा की ओर राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। फिर कहा, "आखिर मैंने रवि का क्या बिगाड़ा है?"

शांतम्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अनुभव किया कि राम का हृदय क्रोध और क्षोभ [illegible] हुआ है और वह अपमान के मारे विदग्ध हो रहा है।

"शायद मेरा बार-बार आना उचित नहीं है।" राम मन में गुन-गुनाते हुए फिर बोला, "अच्छा, मैं जाता हूं।"

"राम!" लक्ष्मी ने जोर से कहा। राम ने लौटकर देखा, लक्ष्मी की आंखें सजल थीं।

"तुमको दुःखी बनाना मेरा मतलब कभी नहीं है, लक्ष्मी ! हो सका तो कल फिर आऊंगा।" राम ने कहा।

लक्ष्मी ने आंसू पोंछे। पर कोई जवाब न दिया। राम सीढ़ियां उतर रहा था कि सामने से धर्मय्या आ पहुंचा।

"क्यों, जा रहे हो, बेटा !" धर्मय्या ने सरल भाव से पूछा।"

"जल्दी है।" राम ने उत्तर दिया।

धर्मय्या राम की ओर देखता रहा और उसके आंखों से ओझल होने पर घर में कदम रखा।

लक्ष्मी बैठक में थी। उसके पीछे रवि कमीज पहनते हुए राम की ओर देख रहा था।

१६ ||

दूसरे दिन प्रातःकाल शांतम्मा बिस्तर से नहीं उठी। लक्ष्मी घर के काम-काज में लग गई। रवि कारखाने चला गया।

धर्मय्या अपने कमरे में बैठकर भगवद्गीता का पारायण कर रहा था। अचानक आहट पाकर उसने सिर उठाकर देखा। लक्ष्मी पंखा लिये जा रही थी।

"किसके लिए, पंखा लिये जा रही है, बेटी ?"

"चूल्हा जलता नहीं, बाबूजी ! फूंक-फूंककर आंखों से पानी आ गया। इसीलिए चूल्हा जलाने को पंखा ले जा रही हूं।"

"शांतम्मा कहां है ?"

"तबीयत ठीक नहीं है। सुबह से उठीं तक नहीं।"

"अरे, मुझसे किसीने कहा भी नहीं !"

"मैं भी नहीं जानती थी, बाबूजी !" यह कहकर लक्ष्मी रसोई में चली गई।

"शांतम्मा !" धर्मय्या ने चारपाई के निकट खड़े होकर पुकारा।

"हूं !" कहते हुए शांतम्मा उठने को हुई।

"लेटी रहो, बहन !" धर्मय्या ने समझाया, पर शांतम्मा उठकर खाट पर बैठ गई। धर्मय्या एक तिपाई पर बैठ गया।

"क्यों, तबीयत ठीक नहीं ?"

"सारे शरीर में दर्द हो रहा है, भैया !"

"वैद्य को बुला लाऊं ?"

शांतम्मा घबराये हुए स्वर में बोली, "नहीं, भैया, वैसे कोई बीमारी नहीं है। मेरा मन कुछ अशान्त है। बस ! और कुछ नहीं।"

धर्मय्या ने शांतम्मा के चेहरे को ध्यानपूर्वक देखा। उसके चेहरे पर अपार व्यथा प्रतिबिंबित थी। धर्मय्या उसकी व्यथा का कारण समझने का यत्न करने लगा।

"भैया, कल आपने रवि का व्यवहार देखा है न !" शांतम्मा ने कहा।

धर्मय्या ने राम के साथ रवि का बर्ताव देखा तो न था, पर सुना था। लेकिन ऐसी छोटी बात पर माता का हृदय क्षोभ से व्याकुल हो जाता है, इसकी कल्पना वह न कर सका।

"पगली !" धर्मय्या मुस्कराया।

"इसमें राम का क्या दोष था ? राम से रवि को दुश्मनी क्यों मोल लेनी चाहिए ?...वह जबतक यहां आता रहे तो मेरा मन हल्का रहेगा। रवि का व्यवहार ऐसा ही रहा तो राम हमारे घर में कदम तक नहीं रखेगा !" शांतम्मा के कंठ में वेदना उभर आई।

धर्मय्या ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"आखिर रवि ऐसा कठोर क्यों बन गया है !...अपने पिता का श्राद्ध करने से इन्कार करनेवाला भी कोई होगा ?" शांतम्मा ने कहा।

'मन अशांत है, तो आराम करो बहन, लेकिन मेरे रहते तुमको चिंता करने की कोई जरूरत नहीं।" इतना कहकर धर्मय्या अपने कमरे में चला गया।

कड़ी धूप पड़ रही थी। मरम्मत के लिए आई हुई मोटर-साइकिल

पर रवि घर आया। मोटर-साइकिल की आवाज सुनकर लक्ष्मी ने बाहर आकर देखा, फिर अन्दर चली गई।

रवि के पास अपनी कोई सवारी नहीं है, इसलिए वह कभी साइकिल पर घर आता है, तो कभी पैदल ही आता है।

पसीना पोंछते हुए रवि भीतर आया। "लक्ष्मी!" रवि ने पुकारा।

लक्ष्मी सामने आकर खड़ी हो गई।

"मां चारपाई से नहीं उठीं?" रवि ने पूछा। प्रतिदिन शांतम्मा चार बजे जागती हैं, पर आज अभी तक नहीं उठी थी। रवि ने काम पर जाते समय अपनी मां को लेटे हुए देखा था।

"नहीं!" लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

"अच्छी बात है! खाना परोसो!" रवि ने कमीज उतारकर खूंटी पर टांगते हुए कहा।

रवि मां की चारपाई के पास गया। प्रेम से पुकारा, "मां!"

शांतम्मा ने जवाब नहीं दिया। रवि ने चारपाई पर बैठते हुए मां के सिर पर हाथ रखा, "क्यों, मां तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है!" शांतम्मा की आवाज भारी थी। लक्ष्मी खाना परोसकर वहां आ पहुंची।

"क्यों, लक्ष्मी! मां बहुत उदास है!" रवि ने अपने भोलेपन का परिचय देते हुए पूछा।

लक्ष्मी कुछ कहने जा रही थी, इतने में अपने पिता को देहली पर खड़े देखकर मौन हो गई।

"तुम ज़ैसे पुत्र को जन्म देनेवाले का जब-तब ऐसा हो जाना स्वाभाविक ही है।" धर्मय्या ने कहा।

रवि ने आश्चर्य के साथ धर्मय्या की ओर देखा। उसकी बात व्यंग्य बाण की भांति उसके दिल पर जा चुभी। उसने अनुभव किया कि उसकी भूल के कारण मां दुःखी है! फिर भी बोला, "मैंने आखिर गलती ही क्या की है?"

"तुम्हें जो गलत मालूम न हो, उसे सही मानना भी तो एक गलती है। कल रात तुमने अपने दोस्त के साथ जैसा व्यवहार किया, उसे ठीक

समझते हो ?" धर्मय्या ने पूछा ।

रवि ने चकित होकर देखा । फिर सोच में पड़ गया ।

"पाल-पोसकर बड़ा करनेवाले पिता का देहांत हो जाने पर साल में एक बार उनका स्मरण करके श्राद्ध करना भी तुम गलत समझते हो !" ये शब्द कहते हुए धर्मय्या रवि के निकट आया । शांतम्मा उठ बैठी ।

"रवि, पहले घर में दिया जलाओ, फिर मंदिर में । घर-भर के लोगों को दुःख पहुंचानेवाला कोई कितना ही महान कार्य क्यों न करता हो, उसका कोई प्रयोजन नहीं होता । यदि तुम बुद्धिमान हो, तो तुम जिस सत्य पर विश्वास करते हो, शांति और सहन-शीलता के साथ उसे समझाओ और लोगों में परिवर्तन लाने की कोशिश करो ! लेकिन ऐसा न करके जबर्दस्ती तुम अमृत भी पिलाना चाहोगे तो वह विष बन जायगा ! क्यों, ठीक है न ?" धर्मय्या ने स्पष्टता के साथ कहा ।

रवि मौन रह गया ।

"तुम भारतमाता को कल्याणकारिणी बनाना चाहते हो, तो ठीक है, पर मातृ-हृदय को दुःख पहुंचाने के लिए कोई नहीं कहता ।"

इन शब्दों से रवि का दिल पिघल गया । "तब बताइए, मुझे क्या करना चाहिए ?"

"तुम अपने पिता का श्राद्ध करने से इंकार क्यों करते हो ?"

"मुझे पसंद नहीं है !" कठोर स्वर में रवि ने उत्तर दिया ।

धर्मय्या का चेहरा स्याह पड़ गया । उसने कभी कल्पना तक न की थी कि रवि के मुंह से उसे ऐसा उत्तर सुनना पड़ेगा ।

शांतम्मा ने धर्मय्या की ओर देखते हुए कहा, "भैया, आप क्यों सिर खपाते हैं ? हम लोग उसकी कमाई पर जीते हैं, इसलिए हमें उसकी इच्छा के अनुसार चलना है । इस घर में कोई कदम रखना चाहे तो उसकी अनुमति लेकर आना है, उसकी इच्छा न हो, तो कोई हमारे घर में झांक भी नहीं सकता । वह डांटे-फटकारे, हमें सहन करना पड़ेगा ।" शांतम्मा ने आवेश में आकर कहा । उसकी आंखों में आंसू छलक रहे थे । कंठ अवरुद्ध था । रवि देखता रहा ।

रवि को पहले क्रोध आया, फिर व्यथा हुई। उसकी आंखें भर आईं। अपनी मां के पैरों के पास बैठकर आंखें पोंछते हुए बोला, "मां, मुझे इन वचन-बाणों से क्यों घायल करती हो? मैंने कभी अपने मुंह से एक भी शब्द ऐसा निकाला है कि मेरी कमाई पर आप सब जी रहे हैं? यह सोचकर तुम दुःखी हो कि मैंने राम का अपमान किया है, तो मैं उससे क्षमा मांग लूंगा।"

रवि उठ खड़ा हुआ और धर्मय्या की ओर देखते हुए बोला, "यदि मां का यह विश्वास हो कि परलोक में पिताजी श्राद्ध की प्रतीक्षा में हैं, और आज के ब्राह्मणों के द्वारा भोजन उन्हें प्राप्त होगा, तो मैं सच कहता हूं कि वे उसे छुवेंगे तक नहीं। मैं यह बात द्वेष या ईर्ष्या से नहीं कह रहा हूं। शास्त्रों में जिस ब्राह्मणत्व की चर्चा है, उसको खत्म हुए एक अरसा हो गया है।"

"तब तुम्हारा क्या उद्देश्य है?" धर्मय्या ने तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए पूछा।

"पिताजी की अवस्था के किसी गरीब को उनका स्मरण करते हुए खाना खिलावें।"

"तुम्हारा विश्वास है कि वह खाना उन्हें प्राप्त होगा?" धर्मय्या ने पूछा।

रवि ने 'हां' कहना चाहा, फिर उसे लगा कि ऐसा कहने से उसका सिद्धांत दुर्बल होगा। इसलिए अपनेको संभालते हुए बोला, "उनतक पहुंचने की बात दूसरी है। कम-से-कम पिताजी के नाम पर एक गरीब एक दिन पेट-भर खाना खा सकेगा। उसका हृदय कृतज्ञता के भाव से भर जायगा।"

धर्मय्या मुस्कराया। उस मुस्कराहट में तृप्ति थी। शांतम्मा शंका-पूर्ण दृष्टि से देखती रही।

धर्मय्या रवि के निकट आकर बोला, "अच्छा! रवि, ऐसा ही करेंगे। खाना ठंडा हुआ जा रहा है। जाकर खाओ।"

रवि ने अपनी मां की ओर देखा। शांतम्मा सिर झुकाये कुछ सोच रही थी।

"मां, मैं जा रहा हूं !"

"खाना नहीं खाग्रोगे ?"

"तुम नहीं खाग्रोगी ?"

शांतम्मा बोली नहीं। रवि ने अपनी मां का हाथ पकड़कर कहा, "तुम खाग्रोगी तो मैं भी खाऊंगा।"

लक्ष्मी मुस्कराते हुए रसोई में चली गई।

शांतम्मा धीरेसे उठी। माता ग्रौर पुत्र के रिश्ते में कैसी मधुरता छिपी हुई है ! धर्मय्या विभोर हो उठा।

बरामदे में पंखे के नीचे बैठकर सिगरेट पीता राम गहरे सोच में पड़ा हुआ था। मोटर साइकिल की ग्रावाज सुनकर सिर उठाकर देखा कि इस कड़ी दुपहरी में कौन ग्राया है !

रवि मोटर-साइकिल को खड़ाकर सीढ़ियां पार करके दरवाजे के पास खड़ा हो गया।

राम ने पहले ही रवि को देख लिया था। बोला, "रवि, ग्रन्दर ग्रा सकते हो।"

रवि ने उस महल को बचपन में देखा था। वह राम के पास जा खड़ा हुआ।

"बैठो !" राम ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा।

रवि बैठ गया। राम के इन शब्दों ने उसे ग्राश्चर्य में डाल दिया। वह सोचने लगा कि राम उसका स्वागत न करता तो क्या होता !

राम ने सिगरेट की डिब्बी उसकी ग्रोर बढ़ाते हुए कहा, "लो, पिग्रो।"

"नहीं, मुझे ग्रादत नहीं है।" रवि के उत्तर में नम्रता थी।

"ग्रादत नहीं ?"

"नहीं !"

"ग्रच्छा, इतनी धूप में कैसे ग्राना हुग्रा ?"

रवि एकसाथ जवाब न दे पाया। राम ग्राश्चर्य से उसको देखता रहा। रवि ने उठकर पूछा, "तुम मुझसे नाराज तो नहीं हो ?"

"नहीं।" राम ने बैठे-बैठे ही उत्तर दिया।

"तुम नाराज भले ही न हो, पर मां नाराज है। मेरी भूल हो तो..." रवि आगे के शब्द नहीं कह पाया।

रवि के लज्जा-पूर्ण मुख-मण्डल को देखकर राम को हँसी आ गई। उठकर रवि के कंधे पर हाथ रखा, फिर हँसते हुए बोला, "मैं पहले से तुम्हारे स्वभाव से परिचित हूं। तुम्हें जानते हुए भी मैं क्यों नाराज हो जाऊंगा? अरे, इसमें क्षमा मांगने की क्या बात है?"

रवि का मन हल्का हो गया।

"अच्छा, मैं जाता हूं। घर आते रहना।" इतना कहकर रवि मोटर-साइकिल पर सवार हुआ। राम उसी ओर देखता रहा।

"कौन था वह?"

ये शब्द सुनकर राम ने मुड़कर देखा। महल की सीढ़ियों पर गंगाधर राव की गंभीर आकृति दिखाई दी। राम सिगरेट की डिब्बी को अपने पिता से बचाने की कोशिश करने लगा।

"वह कौन आया था?" फिर वही प्रश्न था।

"एक दोस्त!"

"उसका नाम नहीं बता सकते?" सीढ़ियां उतरते हुए गंगाधर राव ने पूछा।

"उसे रवि कहते हैं।"

गंगाधर राव राम की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर फिर सीढ़ियां चढ़ते हुए बोले, "रवि!"

राम चुप! "उसके पास मोटर-साइकिल भी है?" गंगाधर ने व्यंग्य से पूछा। "कोई मरम्मत के लिए छोड़ गया होगा!"

जमींदार हँस पड़े। उस हँसी में मलिन भाव छिपा था।

"तुमको बढ़िया दोस्त मिला है!" कहकर गंगाधर राव महल की सीढ़ियां पार करने लगे।

१७ ||

शांतम्मा जबसे विधवा हुई, तबसे प्रतिवर्ष श्राद्ध का प्रबंध किया करती थी। जब बच्चे छोटे थे, तब वह श्राद्ध के दिन बड़े तड़के स्नान करके पवित्र भावना से सारे दिन अपने पति का नाम जपते उपवास करती। इस कार्य में उसे अपूर्व मानसिक संतोष प्राप्त होता।

धर्मय्या के घर में आने के बाद पुरोहित को बुलवाती, शिशु रवि के हाथों से श्राद्ध करवाती। पिछले साल तक रवि ने कभी शांतम्मा का विरोध न किया। लेकिन इस बार उसके रुख को देखकर शांतम्मा का हृदय व्याकुल हो गया।

दिन में दस बजे के करीब सुब्बय्या नामक साठ वर्ष का वृद्ध धर्मय्या के बुलावे पर आ पहुंचा। वह ब्राह्मण-द्वेषी था। इसलिए उसने भी रवि के विचार का अभिनंदन किया। भर-पेट भोजन करके उसने रवि को शतायु होने का अशीर्वाद दिया।

श्राद्ध के दिन शांतम्मा निराहार रहती थी। रवि को भी शाम के समय फलाहार करने का आदेश था। भूख से परेशान रवि ने मां की आज्ञा का पालन करने का निश्चय किया। उस दिन वह काम पर नहीं गया। कोई पुरानी पुस्तक पढ़ रहा था। आहट पाकर उसने सिर उठाकर देखा।

"क्या तुमने कल राम से बात की ?" शांतम्मा ने पूछा।

रवि को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि यह समाचार मां को कैसे मालूम हुआ !

"क्या राम यहां आया था ?"

"नहीं।"

"तो तुमको कैसे मालूम हुआ कि मैं वहां गया था ?"

शांतम्मा को उसके जाने का पता न था, परंतु वह रवि के स्वभाव

से परिचित थी, इसलिए जब रवि मोटर-साइकिल पर जमींदार के घर की ओर गया, तब शांतम्मा ने सोचा कि वह अपने मन के मैल को धोने के लिए सीधे राम के पास गया होगा।

"मुझे लगा कि तुम जरूर गये होगे।"

पुस्तक जोर से खाट पर पटककर वह बोला, "मैं कोई आवारा तो हूं नहीं। वहां क्यों जाऊं?"

"राम को बुलायंगे तो अच्छा होगा।" शांतम्मा ने मृदुल स्वर में कहा।

"किसलिए?"

शांतम्मा जानती है कि किसलिए बुलाना है, पर वह रवि को कारण बताना नहीं चाहती। यदि आज वह भी पितृश्राद्ध का भागी हो, तो शांतम्मा का हृदय आनंद का अनुभव करेगा।

शांतम्मा ने अपनी बात छिपाते हुए कहा, "क्योंकि वह तुम्हारा दोस्त है।"

"मां, अमीर और गरीब के बीच दोस्ती नहीं टिकती! अमीर गरीबों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, नहीं तो कल जाकर..." वह कुछ और कहना चाहता था, पर कह न पाया। बाहर चला गया।

शांतम्मा ने रवि की बातों का अर्थ न समझा, किन्तु उसने अनुमान किया कि कल कोई घटना हुई होगी।

थाली में फूल लिये लक्ष्मी आई और शांतम्मा के पीछे खड़ी होकर रवि को देखते हुए बोली, "मामी! रवि कहां जा रहे हैं?"

शांतम्मा से कोई उत्तर न पाकर वह फिर बोली, "मामी, थोड़े-से फूल मिले हैं।

"बेटी, एक काम करोगी?"

"नहीं मामी, अब मैं कुछ नहीं कर सकती! मैं थक गई हूं।"

'मेरी रानी बिटिया हो न!" शांतम्मा स्नेहपूर्ण स्वर में बोली।

"अच्छा, बताओ।"

"राम को नाश्ते के लिए बुलाना है!"

लक्ष्मी का सिर लज्जा से झुक गया। 'राम' का नाम सुनते ही

लक्ष्मी के हृदय में जो भावना पैदा हुई, उसे शांतम्मा कैसे समझ सकती है ?

"क्यों, लक्ष्मी ?" शांतम्मा ने फिर पूछा।

"मैं नहीं जाऊंगी !"

"अच्छी बात है !" शांतम्मा ने दीर्घ निश्वास लिया।

"राम का नाम सुनकर तुम दोनों परेशान क्यों होते हो !"

लक्ष्मी ने शांतम्मा के प्रशांत मुख-मण्डल पर व्यथा की रेखाएं देखीं। उसने शांत स्वर में पूछा, "हमारी परेशानी की बात छोड़ दो, लेकिन तुम राम को इतना प्यार क्यों करती हो ?"

शांतम्मा ने नहीं सोचा था कि लक्ष्मी ऐसा प्रश्न पूछ बैठेगी। उसकी बात लक्ष्मी के सामने प्रकट न हो जाय, यह सोचकर शांतम्मा भीतर चली गई।

"मामी, मैंने मज़ाक में कहा था। राम से किसीका वैर नहीं है। लेकिन मेरे जाकर कहने से अच्छा होगा ? न मालूम वह क्या सोचेंगे ?..." आंचल का पल्ला मरोड़ते हुए लक्ष्मी बोली।

लक्ष्मी को भेजने में जो कठिनाई है, वह शांतम्मा की समझ में आई।

"मुझे किसलिए बुलाया है ?"

ये शब्द सुनकर शांतम्मा और लक्ष्मी ने ड्योढ़ी की ओर देखा। राम खड़ा हुआ था।

"आओ बेटा, अन्दर आओ !" अपनी प्रसन्नता को छिपाते हुए शांतम्मा ने स्वागत किया।

राम अन्दर आया। लक्ष्मी किवाड़ की आड़ में जा खड़ी हुई।

"तुमको कौन बुलाने गया था ?" शांतम्मा ने पूछा। किवाड़ की आड़ में से लक्ष्मी का आंचल फड़फड़ाता देख राम अपनी दृष्टि उस-पर केन्द्रित कर चुका था। इसलिए शांतम्मा की बात का उसने तत्काल उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बाद संभलकर बोला, "और कौन बुलायगा ! रवि ने बुलाया है।" यह कहते राम ने जेब में से सिगरेट निकाली।

"अभी आई !" इन शब्दों के साथ शांतम्मा भीतर चली गई।

"लक्ष्मी !" राम ने प्रेमभरे स्वर में पुकारा ।

जवाब तो नहीं मिला, पर किवाड़ की आवाज हुई ।

"जरा दियासलाई देना ।"

लक्ष्मी दियासलाई ले आई । दूर से फेंक दी । वह चारपाई से नीचे गिर पड़ी ।

राम ने कहा, "लापरवाही से जो चीज दी जाती है, उसकी मुझे जरूरत नहीं ।"

लक्ष्मी न मुस्कराते हुए दियासलाई उठाई । बोली, "लो ।"

तिरछी नजर से देखते हुए हाथ बढ़ाकर राम बोला, "पहले ही हाथ में दे देतीं तो क्या बिगड़ जाता ?"

"क्या सिगरेट मीठी होती है ?"

"मीठी हो तो फूंकना ही क्यों ?"

"तो उसका स्वाद कैसा होता है ?"

"तुम नहीं समझ सकतीं !" राम सिगरेट जलाकर धुआं फेंकने लगा ।

"सिगरेट पीने का नतीजा क्या होता है ?"

"तुम बताओ ।"

"सुना है, दिल का दौरा हो जाता है ?" भयकंपित चेहरा बनाकर लक्ष्मी बोली ।

"उस बीमारी का भी अनुभव मैं ही तो करूंगा ।" कटु स्वर में राम ने उत्तर दिया ।

यह उत्तर पाकर लक्ष्मी के चेहरे के भाव बदल गये, "क्या तुम इस आदत को छोड़ नहीं सकते ?"

"मुझपर ऐसी मेहरबानी किसलिए ?"

लक्ष्मी ने जवाब नहीं दिया । पर उसके चेहरे पर लज्जा की रेखाएं खिंच गईं ।

"अच्छा, कोशिश करूंगा !" यह कहते हुए राम ने सिगरेट दूर फेंक दी । फिर बोला, "लेकिन मैं वचन नहीं दे सकता कि बिलकुल छोड़ दूंगा, पर तुम्हारे सामने कभी नहीं पीऊंगा !"

"नहीं, छोड़ना ही होगा !"

राम ने सोचा कि यह मुझपर कैसा अधिकार जता रही है ! प्रकट रूप में बोला, "कहना आसान है, पर..."

लक्ष्मी ने राम की ओर देखा। उन आंखों में जो कांति थी, उसने लक्ष्मी के हृदय को पुलकित कर दिया। एकबारगी वह कांप उठी और धीरे-धीरे कमरे की ओर बढ़ने लगी।

राम ने उठकर उसका हाथ पकड़कर कहा, "एक बात सुनती जाओ।" लक्ष्मी ने वापस मुड़कर देखा और कहा, "राम !" लक्ष्मी के कंठ में अधिकार-पूर्ण तीव्र ध्वनि थी। राम ने चौंककर हाथ ढीला कर दिया। लक्ष्मी अपने कमरे में चली गई।

राम अपनी भूल पर पछताते हुए चारपाई पर जा बैठा। फिर शांतम्मा का दिया खाना बेमन खाता रहा। इतने में लक्ष्मी कॉफी ले आई।

शांतम्मा ने लक्ष्मी के हाथ से कॉफी लेकर राम की ओर बढ़ाई। राम ने एक बार लक्ष्मी की ओर देखा, लेकिन वह ज्यादा देर देख नहीं पाया।

"मुझे नहीं चाहिए, मां !" ये शब्द कहते हुए राम चल दिया और गली में जा पहुंचा।

शांतम्मा के हाथ में कॉफी का गिलास थमा रह गया। तभी रवि ने बैठक में आकर देखा, थाली में खाना और शांतम्मा के हाथ में कॉफी का गिलास है।

"शायद तबीयत ठीक नहीं है।" शांतम्मा ने कहा।

"वह जैसा खाना खाते हैं, उनके सामने यह क्या चीज है।" यह कहते मां के हाथ का गिलास लेकर बोला, "पीनेवाले न हों, तो दुःखी होना चाहिए।" रवि गिलास मुंह के पास ले गया।

"क्या भूल गये कि रात तक कुछ नहीं छूना चाहिए।" शांतम्मा का आदेश सुनकर रवि चारपाई पर जा बैठा।

लक्ष्मी मुस्करा दी। उस मुस्कराहट में कोई आत्म-संतोष छिपा हुआ था। रवि ने लक्ष्मी की ओर क्रोध-भरी दृष्टि दौड़ाते हुए कहा,

"तुमको मजाक सूझना है।" रवि की आंखों में भूख झलक रही थी।"

"मैं तुम्हारे लिए नहीं हँसती।" कहते हुए वह अन्दर चली गई।

शांतम्मा ने यह समझने का प्रयत्न नहीं किया कि लक्ष्मी क्यों मुस्कराई थी।

१८

राम बड़ी देर तक सोने की कोशिश करता रहा, पर उसे नींद नहीं आई। लक्ष्मी के प्रति उसने जो अस्वाभाविक व्यवहार किया था, उससे वह यह अनुभव करने लगा कि उसके संस्कार व्यर्थ हो गये हैं। फलतः वह मन-ही-मन पराभव अनुभव करते हुए लक्ष्मी से क्षमायाचना करता रहा। फिर भी उसका हृदय हल्का न हुआ।

सवेरे नौ बजे उसकी आंख खुली। दैनिक कार्यों से निवृत्त होते-होते दस बज गये। कालेज में जाने का उत्साह मंद पड़ गया। पढ़ने के कमरे में बैठकर सोचने लगा।

तभी किसीने द्वार खोला और उससे कुछ कहे बिना वापस लौटा। राम ने पूछा, "कौन है?"

"मल्लय्या, सरकार!" उत्तर मिला।

"क्यों, क्या बात है?"

"बड़े सरकार ने देख आने को कहा था।"

मल्लय्या का उत्तर सुनकर राम का चेहरा फक पड़ गया। वह सोचने लगा कि पिताजी कुछ पूछेंगे तो वह क्या जवाब देगा।

मल्लय्या उस परिवार का नौकर है। जमींदार का बहुत ही विश्वास-पात्र है।

मल्लय्या की बातों में विनोद छलकता रहता है और उसके अभि-नय में मनोरंज की मात्रा अधिक होती है, फिर भी जमींदार उसकी बातों पर विश्वास करते हैं।

इधर कुछ दिनों से मल्लय्या राम पर निगाह रखता था। जहां भी राम निकलता, वह रोक देता, "छोटे सरकार, कहां जा रहे हैं!" धर्मय्या के घर के आसपास राम ने मल्लय्या को दो-चार वार देखा भी था, लेकिन वह कल्पना न कर सका कि मल्लय्या उसके पिता के द्वारा गुप्तचर का नया पद पाकर उसके रहस्यों का भेद ले रहा है। थोड़ी देर बाद वह पुनः लौट आया और उसकी ओर देखते हुए बोला, "छोटे सरकार, बड़े सरकार बुला रहे हैं।"

"किसलिए ?" राम का प्रश्न सुनकर मल्लय्या चौंक पड़ा। वह कुछ उत्तर नहीं दे पाया। राम उठकर गंगाधर राव के कमरे में चला गया।

"कालेज क्यों नहीं गये ?" गंगाधरराव ने पूछा। राम के मुंह से एक साथ जवाब नहीं निकला।

"यह भी भूल गये कि परीक्षाएं निकट आ गई हैं ?"

इस प्रश्न का भी राम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"यह न भूलो कि तुमको बी० ए० में सफलता प्राप्त करनी है। मेरा उद्देश्य यह कभी नहीं रहा कि तुम परीक्षा पास करने के बाद नौकरी करो। मेरा विश्वास है कि तुम योग्य बनकर जमींदार गंगाधर राव का नाम ऊंचा करोगे।"

गंगाधर राव ने चुरुट का कश लेकर गंभीर होकर कहा, "बैठ जाओ।"

राम बैठ गया।

"क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है ?"

"नहीं, ठीक है !" राम ने कहा।

"फिर कालेज क्यों नहीं गये ?"

"आज देरी से उठा !"

"तुम यह भूल जाते हो कि तुम एक जमींदार के पुत्र हो।" जमींदार के स्वर में तीव्रता देख राम स्तंभित रह गया।

"ऐरे-गैरे लोगों के घर जाने से तुम्हारी इज्जत धूल में मिल जाती है, यह बात समझते तो तुम ऐसा न करते !" जमींदार ने ये शब्द कहते

हुए मल्लय्या की ओर देखा ।

राम ने संदेहभरी दृष्टि मल्लय्या पर डाली । मल्लय्या बदले में उसपर वक्रदृष्टि डालकर वहां से चला गया ।

"मैं कहां जाता हूं ?" संशयपूर्ण स्वर में राम ने पूछा ।

गंगाधर राव हँसते हुए बोले, "अगर तुम यह समझते हो कि कहीं नहीं जाते, तो खुशी की बात है । लेकिन मेरा उद्देश्य यही है कि भविष्य में भी तुम ऐसी जगह न जाओ, जहां जाने से हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिले । पिता के नाते अपने पुत्र का हित चाहते हुए क्या ऐसी सलाह देना गलत है ?" जमींदार ने राम की ओर देखा ।

राम के चेहरे पर शंका झलकती रही ।

"अच्छी बात है ! आज की तरह कल का दिन बेकार मत करना । कालेज जाना । समझे !"

राम के दिल की धड़कन थम-सी गई । धीरे-से सीढ़ियां उतरकर नीचे चला गया ।

उस दिन राम का मन विकल रहा । मन को शांत रखने की उसने बड़ी कोशिश की, पर कोई परिणाम न निकला । दोपहर को भोजन के बाद कालेज जाने के विचार से उसने गाड़ी लाने का ड्राइवर को आदेश दिया । ड्राइवर गाड़ी लाकर खड़ा हो गया और राम का इंतजार करने लगा ।

राम किताबें हाथ में लेकर सोचता हुआ थोड़ी देर तक मौन खड़ा रहा । एक बज गया था । विलंब होने के ख्याल से ड्राइवर ने भोंपू बजाया ।

पुस्तकें दराज में रखकर राम बाहर आया और ड्राइवर से बोला, "गाड़ी गैरेज में रख दो ।"

ड्राइवर चकित होकर उसे देखता रहा । "आज मैं कालेज नहीं जाऊंगा ।" यह कहकर राम अपने कमरे में चला गया । ड्राइवर गाड़ी ले गया ।

शाम के चार बजे हाथ-मुंह धोकर राम ने कपड़े बदले और सैर करने निकला । पहले उसने धर्मय्या के घर जाने का विचार किया,

किन्तु थोड़ी दूर जाने के बाद उसे अपने पिता के शब्द याद आ गये। वह थोड़ी देर तक खड़ा रहा, फिर लौटकर बगल की गली में स्थित अपने बंगले में चला गया।

फुलवारी के बीच उस बंगले को जमींदार ने इसलिए बनवाया था कि विहार के लिए आने पर उसमें विश्राम कर सकें। इधर दो वर्षों से जमींदार का स्वास्थ्य इतना संतोषजनक न था, इसलिए वह उसमें जाते नहीं थे। पर दो-तीन दिन में एक बार राम जरूर उस बंगले में हो आया करता था।

बंगले के पीछे के कुएं में से पानी भरने धर्मय्या की गली के लोग अक्सर जाते थे। उस कुएं के पानी के संबंध में जमींदार ने स्वयं एक बार गांव के बुजुर्गों के सामने कहा था कि उसका पानी गंगाजल के समान स्वच्छ और मधुर है। उसे पीने से कोई बीमारी नहीं होती और उसमें औषधियों के गुण हैं। उस दिन से कुएं के समीप रहनेवाले सभी घरों के लोग पानी भरने आने लगे थे। गंगाधर राव स्वयं उसी कुएं का पानी पीते हैं।

नल के पानी के अभ्यस्त लोग धीरे-धीरे कुएं का पानी छोड़ने लगे। फिर भी धर्मय्या तथा कुछ और लोग उसी कुएं का पानी पीते थे।

झुटपुटा हो गया था। चमेली की झाड़ियों के पीछे विशाल शिला पर बैठकर राम ने दीर्घ निश्वास लिया। उसने आसमान की ओर देखा। पंचमी का चन्द्रमा हँस रहा था। जहां-तहां तारे चमक रहे थे।

माली नागन्ना राम को देखकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। लेकिन राम अन्यमनस्क था। उसने नागन्ना को नहीं देखा।

"अंधेरा होता जा रहा है, सरकार !" नागन्ना ने धीरे-से कहा।

"तो ?"

"घर जाना अच्छा होगा, छोटे सरकार।" संकोच से नागन्ना ने धीरे-से कहा।

"मैं अपनी चिंता आप कर सकता हूं। तुम अपना काम देखो।" राम ने डाँट बताई। उस अंधेरे में भी राम देख सका कि नागन्ना का चेहरा कैसे सफेद पड़ता जा रहा है। नागन्ना धीरे-से बंगले की

वगल में बनी अपनी झोंपड़ी में चला गया।

वास्तव में राम को लगा कि उसकी अपनी जो चिंता है, उसे जैसे किसीने छीन लिया हो। "यह व्यथा क्यों ? किसको लेकर यह व्यथा है ?" वह मन-ही-मन गुनगुनाते हुए उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा कि ऐसी दुर्बलता का शिकार होना ठीक नहीं है। जल्दी-जल्दी दो कदम बढ़ाये, पर चमेली की सुगंनधि से स्तंभित रह गया।

राम ने अंधकार में चमेली के फूलों को ढूंढ़ा। फूल दिखाई पड़े। टहनी को झुकाकर उन्हें तोड़ने को सामने हाथ बढ़ाया।

"राम ! यह तुम क्या करते हो ?" एक कोमल कंठ सुनकर वह टहनी को छोड़कर घूम पड़ा।

"उस झाड़ी से दूर हटो।" स्वर में कठोरता थी।

राम ने किसी खतरे की कल्पना करके टहनी को छोड़ दिया और घबराकर हट गया।

लक्ष्मी कुएं से पानी लेकर बालटी से घड़े को भर रही थी। राम उसके निकट जा पहुंचा।

"तुमने मुझे क्यों बुलाया ?"

"मैंने कब बुलाया ? मैंने तो यही कहा कि झाड़ी से दूर हट जाओ।" लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"यह भी नहीं जानते ? अंधेरे में क्या चमेली के पौधों के पास जाया जाता है ?"

"क्यों ? जाने से क्या होता है ?" राम ने अपने भोलेपन का परिचय देते हुए पूछा।

लक्ष्मी हँस पड़ी। वह हँसी बड़ी सरल और मनोहर थी।

"नहीं जानते ? अंधेरा फैलने के बाद चमेली की झाड़ियों में सांप आ जाते हैं।" ये शब्द कहते हुए लक्ष्मी ने बड़ी कोमलता के साथ गगरी को उठाया।

"सांपों के आ जाने से..."

लक्ष्मी हँसने को हुई, पर संभलकर क्रोधपूर्ण स्वर में बोली, "यह

तुम्हें क्या हो गया है ?"

राम ने घबराकर अपनेको देखा। "ज्यादा पढ़ने से शायद दिमाग खराब हो जाता है। ऐसी शिक्षा पाने के बदले चुप बैठे रहना कहीं अच्छा है !" ये शब्द कहकर लक्ष्मी चलने को हुई।

"लक्ष्मी !"

लक्ष्मी रुक गई।

"मैंने कल तुमको दुःख पहुंचाया।" राम के स्वर में व्यथा थी। लक्ष्मी ने समझ लिया कि कल जो घटना हुई, वह आजतक राम के दिल को कुरेद रही है।

"छीः, ऐसी कोई बात नहीं।" फिर मुस्कराते हुए बोली, "उस वक्त कोई देख लेता तो क्या समझता, इसीलिए..." सिर झुकाकर वह जमीन की ओर देखने लगी।

राम ने कहना चाहा, "दूसरों की आंखें बचाकर हाथ पकड़ सकते हैं !" फिर उसने सोचा, ऐसा कहना उचित न होगा।

"इतनी देरी क्यों हुई ?" राम ने पूछा।

"तुम आज हमारे यहां क्यों नहीं आये ?" लक्ष्मी ने कहा। राम ने अनुमान लगाया कि एक के न जाने से दूसरे के आने में विलंब हो गया है।

राम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा। फिर लक्ष्मी के निकट आ पहुंचा। लक्ष्मी घबराकर पीछे हट गई।

"लक्ष्मी, तुम सचमुच..." राम आगे बोल न सका। उसका स्वर कांप उठा।

लक्ष्मी ने भांप लिया। वह मन-ही-मन हँस दी। उसे लगा कि सामने कोई आकृति है, इसलिए वह चलने को तैयार हो गई।

राम उसी ओर देखता रहा। उसने देखा—कोई छाया उसकी ओर आई और उसके बाजू में खड़ी हो गई। सिर उठाकर देखा। वह मल्लय्या था।

"तुम यहां किसलिए आये ?"

"बड़े सरकार ने देख आने को कहा।"

"अच्छी बात है ! तुम जा सकते हो !"

राम के स्वर में कठोरता देखकर मल्लय्या चौंक पड़ा और आगे बढ़ा। राम भारी हृदय लेकर वहां से निकल पड़ा।

१९ ||

रात में गंगाधर राव को न मालूम क्या-क्या बातें सुनाकर मल्लय्या ने अपनी नौकरी की जिम्मेदारी में सफल होने का प्रयत्न किया। यही कारण था कि सवेरे से जमींदार के चेहरे पर क्रोध उमड़ रहा था।

नौ बजे के करीब राम किताब लेकर कार के पास आया, तो देखता क्या है, सामने गंगाधर राव खड़े हैं। वह यह सोचकर पल-भर खड़ा रहा कि शायद पिता कुछ पूछ बैठें, परंतु गंगाधर राव बोले, नहीं, एक बार राम को आपाद-मस्तक देखकर चले गए।

इस बात से राम आश्चर्य में पड़ गया। मगर उसने इसपर विचार करना अनावश्यक समझा। गाड़ी में बैठकर उसने एक बार बरामदे में दृष्टि डाली।

पिता क्रोध और हठपूर्वक राम को देख रहे थे। बगल में मल्लय्या खड़ा था। राम कुछ सोचते हुए देख ही रहा था कि गाड़ी चल पड़ी।

मल्लय्या के द्वारा खबर पाकर धर्मय्या दस बजे के लगभग जमींदार के घर पहुंचा।

जमींदार सीढ़ियां उतरते हुए बोले, "बैठिए, धर्मय्याजी!"

लेकिन जमींदार के पास आकर बैठने की आज्ञा का धर्मय्या पालन न कर सका।

जमींदार सोफे पर बैठते हुए बोले, "कोई जल्दी तो नहीं है?"

"नहीं!"

"तो बैठते क्यों नहीं?"

धर्मय्या सामनेवाली एक कुर्सी पर बैठ गया।

"कैसी तबीयत है?" जमींदार ने पूछा।

"आपकी दया से ठीक हूं।

धर्मय्या के उत्तर में व्यंग्य छिपा था। धर्मय्या की कमीज और पगड़ी फटी हुई थीं।

"शायद धर्म के लिए दया की जरूरत नहीं है?" जमींदार ने बड़ी अक्लमंदी से धर्मय्या की बात का स्मरण दिलाने के लिए यह प्रश्न किया।

धर्मय्या के चेहरे में कोई परिवर्तन दिखाई न दिया। शांत स्वर में बोला, "दयापूर्ण भाव और कार्य को ही तो धर्म कहते हैं।"

"धर्म का पालन करनेवाले, धर्मय्याजी! सुनते हैं, इधर कुछ दिनों से आप धर्म को भूलते जा रहे हैं।"

धर्मय्या ने आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से पूछा, "किसने कहा आपसे?"

"आपका आचरण बताता है!"

"माने..."

"अष्ट वर्षा भवेत कन्या..." जमींदार ये शब्द कहते हुए हँस पड़े। इस व्यंग्य-बाण के आघात से धर्मय्या तिलमिला उठा। जमींदार के शब्दों में यह भाव छिपा था कि युक्त वयस्का कन्या को घर बिठाये यह डींग मारते हो कि धर्म का पालन करते हो। परन्तु धर्मय्या संभल गया। फीकी हँसी हँसकर रह गया। उस हँसी में जमींदार के प्रश्न का उत्तर निहित था।

"हँसते क्यों हैं?"

"आपकी हँसी का अर्थ?"

"युक्तवय होने के पूर्व विवाह करना शास्त्र-सम्मत है न!" जमीं-दार ने तीखी दृष्टि डालते हुए पूछा।

"शास्त्र-सम्मत को धर्म-सम्मत नहीं कह सकते। धर्म-शास्त्र अलग है और शास्त्र-धर्म भिन्न है।" धर्मय्या ने उत्तर दिया।

जमींदार ने घूरकर धर्मय्या को देखा।

"आपका क्या मतलब है!" उन्होंने क्रोध से पूछा।

"मेरे कहने का मतलब यह है कि शास्त्र तो मानव द्वारा रचित है। एक जमाने के शास्त्र-सम्मत निर्णय दूसरे काल में अशास्त्रीय भी बन जाते हैं। लेकिन धर्म इससे सर्वथा भिन्न है। धर्म शब्द की उत्पत्ति सदा

मानवों द्वारा धारण करनेवाले धर्म के आधार पर होती है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसमें स्त्री-पुरुष का तारतम्य, धनी-निर्धन का अन्तर बहुत कम होता है। ईश्वर-प्रेरित धर्म के आगे अहंकार द्वारा सृजित शास्त्र कपूर की भांति अदृश्य हो जाते हैं। आप..."

"ठहर जाइए!" जमींदार गरज उठे।

जमींदार के चेहरे को देखकर धर्मय्या मौन रह गया।

"अगर मैं आपकी गलतफहमी का विरोध करूं, तो आप नाराज हो जाते हैं।"

नहीं, आप बताइए, सयानी होने के बाद भी आपकी कन्या का विवाह संपन्न न करने का कारण क्या है?"

"यह प्रश्न सुनकर धर्मय्या मर्माहत हो गया।

"मेरी इच्छा!" वह कहने को हुआ, पर जिह्वाग्र तक आकर शब्द अंतर्धान हो गये। आवेग को जब्त कर शांत स्वर में बोला, "आप किस उद्देश्य से यह सवाल कर रहे हैं?"

"सद्भावना से।"

"तो, सुनिये! एक वर्ष तक मेरी कन्या का विवाह करना उचित नहीं है।"

"क्या कहते हैं?"

"जीहां, आप अष्ट वर्षा भवेत कन्या की जो बात कहते हैं, वह अंध-युग की है!"

"अंध-युग की?"

"नहीं तो क्या? आप पौराणिक गाथाओं पर विश्वास करते हैं न!...आप सीता और सावित्री की कथाओं को कल्पित नहीं मानते हैं न? उनकी शादियां कब हुई थीं? कैसे हुईं थीं?"

ये प्रश्न करके धर्मय्या जमींदार के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा, पर समाधान न मिला। फिर कहने लगा, "इसीलिए मैंने उसे अंध-युग बताया। पुराण-युग और वर्तमान युग के बीच जो युग बीत गया, उस युग में नारियों को समाज ने मनुष्यों के रूप में स्वीकार नहीं किया। उसीको मैं अंध-युग की संज्ञा देता हूं।"

धर्मय्या ने गहरी सांस ली। फिर किसी बात का स्मरण करके कहा, "सुनिये !"

गहरे सोच में निमग्न जमींदार ने धर्मय्या की ओर देखा।

"सहगमन भी एक समय शास्त्र-सम्मत हो धर्म के रूप में प्रचारित हुआ है न ?"

"जीहां !"

"आज ?".

जमींदार ने उत्तर न दिया। धर्मय्या की तार्किक शक्ति के सामने जमींदार का मलिन क्रोधावेश स्तम्भित रह गया।

"सहगमन को धर्म के रूप में शासित करनेवाले शास्त्रकार अष्ट वर्षा भवेत कन्या नामक संदेश देने में संकोच नहीं करते।...मैं कहता हूं, जबतक बालिका कन्या के रूप में परिवर्तित होकर सोचने की शक्ति नहीं पाती, तबतक उसकी स्वीकृति के बिना विवाह करना अधर्म है।"

"अच्छी बात है ! आपने कभी अपनी पुत्री की स्वीकृति जानने का प्रयत्न किया ?"

"नहीं।"

"क्या आपने कहीं सुना हैं कि कन्या स्वयं अपने पिता के पास जाकर विवाह करने की इच्छा प्रकट करे ?"

धर्मय्या के मन में एक विचार उठा। शंका-भरी दृष्टि से उसने जमींदार की ओर देखा। जमींदार उठ खड़े हुए, "मैं यह नहीं कहता कि आपका कथन सत्य से परे है। परन्तु वयस्का कन्या का चरित्र..."

"चरित्र ?" जोर देकर धर्मय्या ने पूछा।

"बात वैसी कोई नहीं है। लक्ष्मी बड़ी योग्य कन्या है। लेकिन आप जानते हैं कि विलंब करने से कन्या के चरित्र द्वारा कई परिवार कलंकित हो जाते हैं !"

ये शब्द कहते-कहते जमींदार धर्मय्या के निकट आये, उसकी पीठ को थपथपाते हुए बोले, "आप मेरे आत्मीय हैं। इसीलिए बुला भेजा। कोई अच्छा संबंध तलाश कीजिए। सहायता की जरूरत हो तो मैं देने को

तैयार हूं ! अब आप जा सकते हैं !"

धर्मय्या की समझ में न आया कि उसके प्रति जमींदार के मन में यह अयाचित स्नेह-भाव क्यों कर पैदा हो गया !

कुछ लोगों में ऐसी सामर्थ्य होती है कि वे परिस्थितियों के अनुरूप खतरों से बचते हुए अपने हाव-भावों द्वारा सामनेवाले व्यक्तियों के दृढ़ विश्वासों को भी भुला सकते हैं। असली बात को भुलावे में डालकर अपनी विजय की तृप्ति का अनुभव करते हुए जमींदार पुनः सोफे पर बैठ गये।

शांतम्मा और लक्ष्मी धर्मय्या की प्रतीक्षा करते दरवाजे पर बैठी थी। रवि अभीतक घर नहीं लौटा था। गली के नुक्कड़ पर धर्मय्या को आते देख शांतम्मा और लक्ष्मी भीतर चली गईं।

घर में प्रवेश करते ही शांतम्मा ने धर्मय्या के चेहरे को ध्यान से देखा। घबराये हुए स्वर में पूछा, "क्यों, क्या हुआ, भैया ?"

धर्मय्या शांतम्मा की घबराहट दूर करने के ख्याल से हँस पड़ा, किन्तु उस हँसी में आनंद नहीं छलक रहा था। फिर भी यह सोचकर शांतम्मा का दिल शांत हो गया कि जैसा उसने सोचा था, वैसा खतरा नहीं है।

लक्ष्मी रसोई में चली गई। शांतम्मा को सामने खड़ी देख धर्मय्या ने कहा, "बैठो, बहन !"

शांतम्मा कुर्सी पर बैठ गई।

"लक्ष्मी का विवाह करना होगा न ?"

शांतम्मा मना कैसे करती, पर जमींदार के घर से लौटते ही अचानक धर्मय्या का इस निर्णय पर पहुंचना उसके लिए आश्चर्य की ही बात थी।

"अच्छी बात है। पर गंगाधर राव़जी कहते हैं कि वह थोड़ी-बहुत मदद देंगे।"

शांतम्मा ने तृप्ति के साथ निःश्वास लिया। मन में सोचा—शुभस्य शीघ्रं।

"शांतम्मा।" धर्मय्या ने कहा।

पास में ही बैठी शांतम्मा को धर्मय्या का दुबारा बुलाना कुछ विचित्र-सा लगा। शांतम्मा ने धर्मय्या की आंखों में देखा। उन आंखों में कुछ कहने की कामना व्यक्त हो रही थी। पर जितने उत्साह से पुकारा उतने उत्साह से मन के भाव को प्रकट न कर सका। शांतम्मा ने थोड़ी देर प्रतीक्षा करके पूछा, "क्या बात है, भैया ?"

"तुम कुछ अन्यथा तो नहीं सोचोगी...?"

"छिपाते क्यों हैं, भैया। साफ-साफ बता दीजिये।"

"कोई खास बात नहीं है, बहन! रवि और लक्ष्मी का जोड़ा। और संबंध ढूंढ़ते गांव-गांव फिरने की अपेक्षा उन दोनों का विवाह कर दें तो क्या ही अच्छा होगा।"

आनन्द और आश्चर्य के सीमित भावों से शांतम्मा का चेहरा दीप्त हो उठा। कई दिनों से यह विचार शांतम्मा के मन में चक्कर लगा रहा था, लेकिन वह यह सोचकर अपने भावों को प्रकट नहीं कर सकी कि धर्मय्या कहीं यह न कह दे, "सुयोग्य लक्ष्मी को कर्कश काम करने-वाले रवि के गले में मढ़ देना अच्छा न होगा।"

"इससे अधिक आनन्द की बात और क्या हो सकती है, भैया। आपकी अगर यही इच्छा है तो अवश्य कीजिये।"

किवाड़ की आड़ में खड़ी लक्ष्मी ने अनुभव किया कि दोनों ने गलत कदम बढ़ाये हैं।

धर्मय्या ने लक्ष्मी को देखते ही पुकारा, "लक्ष्मी!"

लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई। वह सिर झुकाये अन्दर आई थी, इसलिए धर्मय्या को उसके चेहरे को पढ़ने का मौका न मिला।

"देखो, बेटी!" धर्मय्या ने उसकी ठोढ़ी ऊपर उठाने का यत्न किया। पर उसके हाथों पर आँसू की बूंदें गिर पड़ीं।

"यह क्या है, बेटी!" धर्मय्या का कंठ कांप उठा।

"यह संबंध मुझे पसंद नहीं है, पिताजी!" आंखें पोंछते हुए लक्ष्मी कमरे से चली गई।

उसी समय कमरे में कदम रखते रवि ने ये शब्द सुने। लेकिन वह समझ न पाया कि लक्ष्मी ने ये शब्द किसके बारे में कहे हैं।

धर्मय्या और शांतम्मा सहसा रवि को देखकर चकित रह गये।

"क्या बात है, मां?" रवि ने पूछा। शांतम्मा सोच रही थी कि इस विपत्ति से कैसे बचे। धर्मय्या सिर झुकाये हुए था।

रवि के मन में हठात कोई विचार आया। उसने जोर से पुकारा, "लक्ष्मी!"

लक्ष्मी रवि की पुकार सुनकर पहले झिझक उठी। मगर उसके क्रोध से परिचित होने के कारण उसने वहां न जाना उचित न समझा। धीरे-से वह कमरे में आई।

"तुमने अभी क्या कहा?" रवि ने पूछा।

लक्ष्मी ने कोई उत्तर न दिया। रवि हँस पड़ा। इतनी जोर से वह कभी न हँसा था। सब आश्चर्य के साथ उसे देखने लगे।

"मैं समझ गया। मेरा विचार पहले जानते तो और घबरा जाते। आप दोनों यह कैसे सोच सके कि लक्ष्मी को अपनी पत्नी बनाने का कुविचार मेरे मन के भीतर है। यह इस जन्म में असंभव है।"

यह कहकर लक्ष्मी की ओर देखते हुए रवि फिर बोला, "लक्ष्मी, तुमसे मैं बहुत प्रभावित हूं। मन की बात कहने में संकोच करनेवालों से मुझे चिढ़ है। स्पष्टवादिता चाहिए। आज तुम मेरी दृष्टि में और बड़ी बन गई हो!"

ये शब्द कहते हुए रवि द्वार तक गया, फिर बोला, "आप सब किसके बारे में सोच रहे हैं? मुझे दस साल तक शादी की जरूरत नहीं है। समझे न!...अब लक्ष्मी की बात रही। कोई अच्छा सम्बन्ध ढूंढ़िए। कर्ज लेकर विवाह करेंगे। शर्त यह है कि वह संबंध लक्ष्मी को पसंद आ जाय।"

धर्मय्या और शांतम्मा रवि की बातें सुनकर चकित हो उठे।

"लक्ष्मी, शादी का मोल-भाव बाद में होगा। मुझे भूख लगी है!" रवि ने लक्ष्मी को पुकार कर कहा।

लक्ष्मी रवि को खाना परोसने चली गई।

राम दो दिन से धर्मय्या के घर जाने को व्याकुल होता रहा, पर उसने लक्ष्मी के प्रति जैसा व्यवहार किया था, उसकी कल्पना-मात्र से उसे लज्जा और अपमान का अनुभव होने लगा।

अनायास उसके मन में दो दिनों से यही विचार उठते रहे, जिनसे उसके मन में लक्ष्मी के प्रति गौरव का भाव बढ़ता गया। लक्ष्मी को देखने के कुतूहल में भी वृद्धि हुई।

कालेज से लौटकर कपड़े बदले। ज्योंही वह जाने को हुआ कि बैठक में से जोर से खांसते हुए जमींदार बाहर आये, पर राम ने मुड़कर अपने पिता को न देखा, उनकी खांसी सुनकर अपनी गति मंद की।

"सूरज डूबने को है! अब कहां जा रहे हो?" गंगाधर राव ने पूछा।

राम रुक गया। सिर झुकाकर धीरे-से बोला, "यों ही, कुछ सूझ नहीं रहा था..."

"अंधेरा हो जाने पर बाहर घूमना अच्छा नहीं है।" कहकर जमींदार भीतर चले गये।

राम कुछ देर खड़ा रहा। जमींदार के मत के अनुसार लौटने की इच्छा न हुई। फाटक खोलकर वह बाहर चला गया।

गंगाधर राव बैठक में खड़े-खड़े राम को देखते रहे। उसके तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार ने जमींदार के मन को व्याकुल कर दिया।

वह शुक्रवार का दिन था। लक्ष्मी-पूजा समाप्त कर थाली में प्रसाद ले अपने पति पर निगाह डालती हुई पार्वती वहां आ पहुंची।

"यह आप क्या देख रहे हैं?" पार्वती ने पूछा।

अन्यमनस्क गंगाधर राव ने पार्वती की ओर देखते हुए नम्रता-पूर्वक हाथ बढ़ाया और प्रसाद को आंखों से लगा मुंह में डाल लिया।

फिर सोफा पर जा बैठे।

अपने पति से उत्तर न पाकर पार्वती चली गई।

गंगाधर राव अबतक बराबर व्याकुल रहे कि राम को यह मालूम न हो जाय कि शांतम्मा उसकी असली मां है, पर उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि इससे भी बढ़कर एक विपत्ति उस परिवार पर आयगी। जमींदार किसी भी स्थिति में राम की भूल से एक गरीब परिवार की कन्या को अपनी बहू बनाने के लिए तैयार न थे। वह सोफा से उठे। उन्होंने आवाज दी, "मल्लय्या ?"

"जी, सरकार !"

"चलो, थोड़ा घूम आवें !"

"सरकार, ड्राइवर को बुलाऊं ?"

"नहीं, पैदल चलेंगे।"

मल्लय्या को आश्चर्य हुआ। वह जानता है कि अपने अधिकारी की आज्ञा का तिरस्कार करने का अधिकार उसे नहीं है। इसलिए वह जमींदार के पीछे चला।

राम ने जब धर्मय्या की ड्योढ़ी पर कदम रखा, तो शांतम्मा बैठक में अकेली बैठी थी। राम को देखकर वह उठ खड़ी हुई। बोली, "बैठ जाओ, बेटा !"

राम कुर्सी पर बैठ गया। उसकी आंखें लक्ष्मी को ढूंढ़ रही थीं।

"आजकल आते नहीं, बेटा ?"

"परीक्षाएं निकट आ रही हैं न ?" यह कहते हुए राम ने धर्मय्या के कमरे की ओर देखा और पूछा, "मास्टरजी कहां हैं ?"

"गांव गये हैं !"

राम को आश्चर्य हुआ। उसने धर्मय्या को कभी कहीं बाहर जाते नहीं सुना था। इसलिए बड़ी उत्कंठा से पूछा, "किस गांव को ?"

शांतम्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रसोई बनाने में मग्न लक्ष्मी बड़ी उत्सुकता से ये बातें सुन रही थी।

"लक्ष्मी दिखाई नहीं देती ?" इस प्रश्न में आतुरता छिपी थी।

"रसोई बना रही है।" शांतम्मा का उत्तर पाकर राम उठते हुए

बोला, "मां, घूमने जाता हूं ।"

लक्ष्मी रसोईघर से आ पहुंची । राम से परामर्श करने का कुतूहल उसमें नहीं था ।

मंदहास-हीन लक्ष्मी के शुष्क वदन को उस धुंधले अंधेरे में राम देख नहीं पाया ।

राम अनुभव करता रहा कि वह वहां पर एकाकी व पराया बना हुआ है ।

जाते-जाते राम ने फिर पूछा, "हां, भूल गया । मास्टरजी किस गांव गये हैं ?"

"एक गांव क्या, जहां-जहां अच्छे सम्बन्ध का पता चले, वहां-वहां जायंगे ।" शांतम्मा ने कहा ।

"सम्बन्ध ?" राम ने आश्चर्य के साथ पूछा । उसने इधर-उधर दृष्टि डाली कि कहीं लक्ष्मी दिखाई दे, पर लक्ष्मी वहां न थी ।

"हां, हमारी लक्ष्मी के लिए लड़का तलाश करने गए हैं ।" शांतम्मा ने स्पष्ट शब्दों में कहा ।

यह बात राम को विजली के आघात-सी लगी । वह स्तम्भित खड़ा रह गया ।

"वेटा, मास्टरजी के जाने का तुम्हें पता नहीं है !" शांतम्मा ने आश्चर्यपूर्ण स्वर में पूछा ।

लक्ष्मी राम की नजरों से बचकर दीवार से सटी खड़ी थी और उसके मुखमंडल पर विराग के भाव झलक रहे थे ।

राम ने एक बार दीर्घ श्वास लिया, पर उस धुंधलके में शांतम्मा देख नहीं पाई ।

"वेटा, तुम यह जो उपकार कर रहे हो, इसे तुम्हारे मास्टरसाहब जिंदगी-भर भूल नहीं सकते ।" ये शब्द कहकर शांतम्मा राम के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी । राम देखता रहा ।

"तुम अपने पिता से कहकर लक्ष्मी की शादी में जो मदद कर रहे हो, उससे मास्टरसाहब बहुत ही प्रसन्न हैं ।" शांतम्मा ने पुनः कहा ।

"हं-आं !" सिर हिलाते हुए राम ने कहा ।

इसी बीच रसोईघर में से उफान की गंध आई। शांतम्मा दौड़ गई। राम के शब्दों ने लक्ष्मी के दिल में भी उफान भर दिया था।

"लक्ष्मी!" राम ने चौखट पकड़े झांककर निश्चल भाव से खड़ी लक्ष्मी को देखकर पुकारा। लक्ष्मी ने उसकी ओर देखा।

"यह सब क्या है?"

"कुछ नहीं है।"

"तुमको मन की बात स्पष्ट कह देनी चाहिए थी?"

"मैं मर्द नहीं हूं।" इन शब्दों के साथ वह राम के सामने आ खड़ी हुई और बोली, "इसमें मेरा दोष ही क्या है? मुझसे छिपाकर तुमने सारे प्रबंध किये। मुझे ऐसा दंड क्यों दे रहे हो? उल्टे मुझपर इलजाम लगा रहे हो! अब मुझे भूल जाओ। यहां से चले जाओ।" अपने भावों पर नियंत्रण न कर सकने की हालत में लक्ष्मी ने ये शब्द कहे और उमड़नेवाले दुःख को रोकने का यत्न करते हुए अपनी आंखों को ढक लिया।

शांतम्मा ने रसोईघर से लौटते हुए इस दृश्य को देखा। राम अपनी सफाई देना चाहता था, पर शांतम्मा को देखकर चुप रह गया।

"मैं बगीचे में जाता हूं।" इतना कहकर राम घूम पड़ा और चला गया।

शांतम्मा के आश्चर्य की सीमा न रही। लक्ष्मी के कंधे पर हाथ रखते हुए बोली, "लक्ष्मी!"

फिर थोड़ा ठहर कर शांतम्मा ने कहा, "मैं कोई पराई नहीं हूं! क्या मैं नहीं सुन सकती?"

लक्ष्मी घूम पड़ी और शांतम्मा के हृदय में सिर छिपाकर 'मामी!" कहती हुई रो पड़ी।

शांतम्मा की आंखों में आंसू छलछला उठे। लक्ष्मी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोली, "वह हाथ लगनेवाला फल नहीं...मैंने भी ऐसी किस्मत को देखना चाहा था, पर..." शांतम्मा का कंठ गदगद हो उठा।

लक्ष्मी अपने मन को संभाल न सकी। अपने पिता के कमरे में जाकर बिस्तर पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

राम ने कहा था, "मैं बगीचे में जाता हूं।" इन शब्दों का अर्थ लक्ष्मी समझ गई थी। अर्थात राम चाहता था कि लक्ष्मी एकांत में बगीचे में उससे मिले। इसलिए संकेत रूप में उसने ये शब्द कहे। सीधे जाकर वह बगाचे में अपनी जगह पर बैठ गया।

राम को इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उसके पिता उससे छिपाकर लक्ष्मी की शादी का प्रबन्ध कर चुके हैं। उसकी आंखों में पिता की गंभीर मूर्ति झलक आई। परन्तु जिस पिता के प्रति उसके मन में आदर का भाव था, उन्हींने यह अन्याय किया। अतः राम के मन में पिता के प्रति क्रोध भड़क उठा।

बड़ों के प्रति जो विनय तथा आदर प्रदर्शित किया जाता है, उसकी भी सीमा होती है। मल्लय्या की निगरानी के दृश्य एक बार उसकी आंखों के सामने ताजा हो उठे। उसने सोचा कि प्रेम-पूर्ण हृदय में प्रतिष्ठित लक्ष्मी की मूर्ति को बलात हटाने का कोई यत्न करे, तो इससे अच्छा यही होगा कि प्राणों का अंत ही कर दिया जाय।

सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट सुनकर राम की विचार-धारा टूट गई। उसने चौंककर देखा, पौधों के झुरमुट को चीरकर फैजनेवाली चन्द्रमा की किरणों में कोई आकृति बढ़ी चली आ रही है। राम उठ खड़ा हुआ। हठात् पत्तों की खड़खड़ाहट रुक गई। राम भ्रम में पड़ा, कहीं लक्ष्मी तो नहीं है ? परंतु मल्लय्या को देखकर गहरा निःश्वास लिया। फिर अपनी जगह पर जा बैठा।

थोड़ी देर बाद मल्लय्या की छाया उसके सामने दिखाई दी। राम की आंखों में क्रोध भभक उठा। पैरों के पास पड़ी नारियल की टहनी को उठाकर उसने मल्लय्या पर जोर से फेंक दिया।

"बापरे ! मर गया !" मल्लय्या जोर से चिल्लाया।

राम ने उठकर उसकी बांह पकड़ ली और गरज उठा, "जोर से चिल्लाओगे तो मार खाओगे।"

मल्लय्या कांपते खड़ा रहा।

"यहां किसलिए आये हो ?"

मल्लय्या ने कोई जवाब नहीं दिया। कांपते हुए खड़ा रहा। राम

को अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ। उसने जेब में हाथ डाला। पांच रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाकर कहा, "यह लो। पिताजी से कुछ मत कहना।"

थोड़ी दूर कुएं के पास खड़े जमींदार यह दृश्य देख रहे थे। पर वह सामने नहीं आये। पास में खड़े एक दूसरे नौकर नागय्या के कान में उन्होंने कुछ कहा और चले गये।

मल्लय्या के जाने पर राम ने सोचा कि अपनी जिंदगी में पहली बार उसने दूसरे प्राणी को शारीरिक कष्ट पहुंचाया है। लेकिन उसे क्या मालूम था कि उसने एक और प्राणी के हृदय में अज्ञात घाव पैदा कर दिया है और वह प्राणी दो दिन से भूख-प्यास-नींद तजकर क्षोभ से व्याकुल है?

घड़ी देखी, नौ बज गये थे। लक्ष्मी के आने की आशा जाती रही। राम निराशा से फाटक की ओर बढ़ा।

"छोटे सरकार!" माली नागय्या ने पुकारा।

"कल से आप इस बाग में नहीं आ सकते!" मल्लय्या के घावों की याद कर डरते हुए नागय्या धीरे-से बोला।

"किसलिए?"

"कल सवेरे बड़े सरकार फाटक बंद करवा रहे हैं।"

"क्यों?" क्षुब्ध होकर राम ने पूछा।

"मैं क्या जानूं, सरकार! कल से मुझे भी घर का कामकाज देखने को बताया है। यह भी कहा है कि इस बगीचे में कल से कोई नहीं आ सकता।

"यह सब उन्होंने कब कहा?" राम ने पूछा।

"अभी! थोड़ी देर पहले!" नागय्या ने यह बात कह तो दी, पर अपनी गलती पर होंठ काटते हुए कांप उठा।

राम भय और आश्चर्य में डूब गया।

"अच्छी बात है।" इन शब्दों के साथ राम ने दीर्घ निःश्वास लिया और फाटक पार करके तेजी से कदम बढ़ाते हुए घर की ओर चल पड़ा।

२१ ||

दस दिन के अन्दर धर्मय्या लक्ष्मी के लिए एक अच्छा सम्बन्ध निश्चय करके लौट आया।

दस मील की दूरी पर स्थित गांव के एक कुलीन परिवार में इस गरीब हालत में कन्या का व्याह करना धर्मय्या के लिए कठिन बात अवश्य थी, पर जमींदार ने जो आश्वासन दिया था, उसके बल पर पांच सौ रुपये दहेज देने का भी उसने वचन दे दिया।

शुभ मुहूर्त में वर की इच्छा पर वधू को देखने की स्वीकृति भी धर्मय्या ने दे दी।

रवि के लिए यह समाचार बड़ा आनंददायक था, पर दहेज की बात सुनकर वह थोड़ा घबराया।

रवि लक्ष्मी के साथ पहले की भांति अधिकारपूर्वक व्यवहार नहीं करता था। उसके व्यवहार में सौम्यता आ गई थी।

लक्ष्मी में भी रवि ने एक विचित्र परिवर्तन देखा। वह कुछ उदास और अन्यमनस्क दीखने लगी। एक दिन थाली पर बैठे रवि ने भोजन करते पुकारा, "रसम चाहिए।"

रसोईघर से आंसू पोंछते लक्ष्मी आई। दही का पात्र रखकर चली गई

दूर बैठी पुरानी साड़ी पर पैबंद लगाती शांतम्मा दहीवाले पात्र को देखकर चकित हो गई।

रवि ने भी पहले आश्चर्य के साथ देखा, फिर हँस पड़ा।

लक्ष्मी उस हँसी का अर्थ नहीं समझ पाई। उसने रवि की ओर देखा।

"मैंने क्या मांगा था ?" रवि ने कहा।

"क्या ?" लक्ष्मी ने पूछा।

"रसम।" रवि हँस पड़ा।

"दही की भी तो जरूरत है।' यह कहते लक्ष्मी रसम लाने रसोई में चली गई।

रवि ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, "मां, जबसे लक्ष्मी ने शादी की बात सुनी है, तबसे उसका दिल ससुराल में पड़ा है।"

शांतम्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन धर्मय्या ने घर में कदम रखा, तो विस्मय के साथ खड़ा देखता रह गया।

लक्ष्मी तकिये में सिर छुपाये फूट-फूटकर रो रही थी। धर्मय्या चारपाई के निकट गया और पुकारा, "लक्ष्मी !" लक्ष्मी को धर्मय्या के आने का पता नहीं था। वह चौंककर उठ खड़ी हो गई और आंखें पोंछते हुए बाहर जाने लगी।

धर्मय्या ने रोककर पूछा, "रोती क्यों हो, बेटी ?"

लक्ष्मी क्या जवाब देती !

"कुछ नहीं, पिताजी।" यह कहते हुए उसने सिर झुका लिया।

"मुझसे क्यों छिपाती हो, बेटी ? बात क्या है ? बताओ तो !" धर्मय्या ने निकट आकर पूछा।

"क्या बात है, भैया ?" कहते हुए शांतम्मा कमरे में आ पहुंची। उसे देखकर लक्ष्मी का सिर लज्जा से झुक गया।

"लक्ष्मी रो रही है, शांतम्मा !" धर्मय्या ने कहा।

शातम्मा मुस्करा पड़ी और बोली, "भैया, तुमने मां बनकर उसे पाल-पोसकर बड़ा किया। तुमको छोड़कर ससुराल जाने में क्या उसे कष्ट नहीं होगा ?" ये शब्द कहते हुए शांतम्मा लक्ष्मी के निकट आई। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली, "बेटी, बार-बार इस बात की याद करोगी तो दुःखी होगी।"

धर्मय्या का हृदय पिघल उठा। रूमाल से आंसू पोंछते हुए सांत्वना देने लगा, "बेटी, तुम समझदार हो ! शादी के बाद ससुराल जाते समय दुःखी होना स्वाभाविक है। अभी से क्यों रोती हो ? मैं तुम्हारे

साथ जो हूं !"

लक्ष्मी धीरे-धीरे वहां से चली गई। शांतम्मा भी जाने को हुई, तो धर्मय्या ने कहा, "बहन, वे लोग कल तीन बजे आयंगे !"

"कौन लोग ?" शांतम्मा ने आश्चर्य से पूछा।

"वर और उसका पिता।"

"यह क्या ? कहीं वर भी आता है ?"

"यह कोई नई बात नहीं है, बहन ! आजकल सभी शादियां ऐसी ही होती हैं। मुहूर्त भी कल ही रखा जायगा।"

"यह बात गंगाधर रावजी जानते हैं ?"

"अभी से क्यों बताना है !" धर्मय्या ने अपना भोलापन प्रकट करते हुए कहा।

"आप नहीं जानते, भैया ?" शांतम्मा ने धीरे-से कहा।

"सवेरे जाकर उन्हें भी निमंत्रण दे आइये।"

इसपर धर्मय्या हँस पड़ा। शांतम्मा की अक्लमंदी पर उसे आश्चर्य हुआ।

"जमींदार कहीं हमारे घर आयंगे ?"

"मेरी बात आप नहीं समझे। उन्हें यह आदर देना हमारा कर्तव्य है। वह भले ही न आवें, राम के आने में तो कोई आपत्ति न होगी। इसके अलावा सहायता देने की जिम्मेदारी भी उनपर है। ऐसी हालत में उन्हें सूचित किये बिना मुहूर्त निश्चित करना क्या उचित होगा ?"

पुरुष चाहे अपनेको कितने ही समझदार क्यों न मानें, पर शादी के मामलों में औरतें जो सुविधाजनक मार्ग सुझाती हैं, उनपर चकित होना पड़ता है। धर्मय्या ने शांतम्मा के सुझाव पर स्वीकृति दे दी।

जमींदार नहा-धोकर कपड़े पहन रहे थे कि उन्हें मल्लय्या दिखाई दिया।

"क्यों मल्लय्या, क्या बात है ?"

"धर्मय्याजी आपसे मिलने आये हैं ?"

"अभी राम जागे या नहीं ?"

"नहीं सरकार, वह सो रहे हैं !"

"सुनो, धर्मय्या को विठला दो और तुम डाक्टर को लिवा लाओ।"

गंगाधर राव को आते देख धर्मय्या उठ खड़ा हुआ।

"बैठिये, कैसे आना हुआ ?" गंगाधर राव सोफा पर बैठ गये।

"आज मुहूर्त का निश्चय करने वरपक्षवाले आ रहे हैं।" धर्मय्या ने कहा।

जमींदार के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएं खिच गईं।

"शावास, लगन हो तो ऐसी हो ! अच्छी वात है ! मुहूर्त का निर्णय करवा दीजिये !"

"आप पधारिये।"

"कहां ?"

गंगाधर राव के सवाल का जवाव धर्मय्या ने नहीं दिया। वह पहले से ही जानता था कि इस प्रस्ताव का क्या उत्तर मिलेगा। फिर भी शांतम्मा को सतुष्ट करने के लिए ही उसने यह प्रस्ताव किया था।

"मेरे आने की क्या आवश्यकता है ?"

"मैं जानता हूं कि आप बहुत व्यस्त हैं, आ नहीं सकते, परन्तु फिर भी आपको निमंत्रण देना मेरा धर्म है।"

इस 'धर्म' शव्द ने जमींदार के मस्तिष्क में भूतकाल का स्मरण ताजा किया। वह मुस्करा उठा। धर्मय्या भांप गया कि गंगाधर राव क्यों मुस्करा रहे हैं। उसने सोचा कि जमींदार के सामने उस शब्द का प्रयोग करना उचित नहीं है।

"ठीक है, शादी में तो हर हालत में भाग लेना ही है।" जमींदार ने कहा।

"आपको आपत्ति न हो तो राम को भेज दीजिये।"

"उसकी तबीयत ठीक नहीं है !" जमींदार ने कहा।

"क्यों ?"

धर्मय्या के सवाल का जवाब जमींदार क्या देता !

"परीक्षाएं निकट आ गई हैं न रात-दिन जागने से तबीयत थोड़ी खराब हो गई है।"

"कालेज नहीं जाते ?"

"नहीं !" इतना कहकर जमींदार उठ खड़े हुए, "मुझे कई जरूरी काम हैं। आप शीघ्र मुहूर्त का निर्णय करवा दीजिए। मुझे सचमुच बड़ा आनंद हुआ है।"

धर्मय्या के मुंह से आगे कोई बात निकलने के पूर्व ही जमींदार उठकर चले गए।

धर्मय्या के मन में राम को देखने और उससे परामर्श करने की बड़ी उत्कण्ठा थी, लेकिन उस विशाल महल में न मालूम राम किस कमरे में होगा और किसकी अभ्यर्थना करने से पता चल सकता है, उसकी समझ में न आया। निराश होकर वह घर चला आया।

लौटकर उसने शांतम्मा को सारा हाल कह सुनाया। लक्ष्मी ने भी सारा वृत्तांत सुना, पर उसके दिल में कोई व्याकुलता पैदा न हुई।

पर शांतम्मा का मन व्याकुल हो उठा। उसने धर्मय्या से कहा, "भैया, राम की तबीयत न मालूम कैसी है !"

रवि मुहूर्त के निर्णय का शुभ समाचार सुनने के विचार से छुट्टी लेकर घर में बैठा अखबार पढ़ने में लीन था। उसने लापरवाही से कहा, "मां ! इन जमींदारों की बीमारियां बड़ी विचित्र होती हैं।"

"तुम चुप रहो !" शांतम्मा ने डांट बताई। रवि फिर अखबार पढ़ने में मग्न हो गया।

"सिरदर्द होगा, थकावट होगी। शाम को जाकर देख आऊंगा।" धर्मय्या ने सांत्वना दी।

कमरे में अकेली बैठी लक्ष्मी के पास जाकर शांतम्मा बोली, "लक्ष्मी, आज के दिन तुम्हें उदास रहना ठीक नहीं है।"

लक्ष्मी ने विस्मय के साथ शांतम्मा को देखा।

"सुनो, एक को लेकर दूसरा दुःखी होता है, तो वह व्यर्थ नहीं जाता !" फिर लक्ष्मी के पास बैठकर बोली, "सुनती हो, राम की तबीयत ठीक नहीं है। तुम प्रसन्न रहोगी तो वह भी प्रसन्न रहेगा।"

लक्ष्मी की समझ में नहीं आया कि शांतम्मा नाहक क्यों परेशान है। उसने तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा, "मामीजी, यह तुम क्या कहती

हो ?"

शांतम्मा लक्ष्मी को खीजते देखकर सकुचा गई। कोई उत्तर नहीं दिया। लक्ष्मी ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए सजल नयनों से कहा,"चाहे मेरा सर्वनाश हो जाय, लेकिन मैं ईश्वर से सदा यही प्रार्थना करती रहूंगी कि राम सुखी रहें। मेरी कभी यह इच्छा नहीं रही कि उनका अहित हो !" ये शब्द कहकर वह सिर झुकाये दुःख को दबाने के लिए अपनी अंगुलियों से आंचल को मरोड़ने लगी।

"छीः ! मैंने यों ही कह दिया ! तुम क्यों दुःखी होती हो, बेटी !" शांतम्मा ने अपने हाथ से लक्ष्मी के आंसुओं को पोंछते हुए समझाया।

२२ ||

"यौवन काल में मानव कल्पनाओं के जो महल खड़े करता है, वे बड़े ही विचित्र तथा कंटक-रहित होते हैं। अपनी कल्पनाओं के विरुद्ध उपस्थित होनेवाले अवरोधों के दृष्टिकोण से विचार करने का वह कभी प्रयत्न नहीं करता और न उत्साह ही दिखाता है। यदि प्रयत्न भी करता है तो रेखाओं के रूप में दीखनेवाले वे प्रतिबिंब चकाचौंध करनेवाली कल्पनाओं की ज्योति के समक्ष फीके प्रतीत होते हैं।

बहुत समय तक रात-दिन विचार एवं मंथन करके जो हवाई किले निर्मित किये जाते हैं, उन्हें आचारण में असंभव होने के कारण उनका निर्माता किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

कुछ ऐसा ही राम के जीवन में हुआ। किन्तु सत्य यह है कि टूटे हुए दर्पण में भी प्रतिबिंब दिखाई देता है। दर्पण के टूटने के पूर्व एक ही आकृति दीखती है, वही अब चार-पांच प्रकार की विकृत आकृतियों के रूप में दर्शित होती है।

राम ने सोचा कि उसके अस्वस्थ होने का समाचार पाते ही लक्ष्मी

किसीके रोके न रुकेगी और उसे एक बार देखने के लिए दौड़ी आयगी। लेकिन वह इस बात का अनुमान न लगा सका कि लक्ष्मी को उसके अस्वस्थ होने का समाचार जल्दी नहीं मिल पायगा।

कई दिन बाद आज पांच बजे के करीब आहार लेकर राम अपने कमरे में बैठा था, तभी धर्मय्या को साथ लेकर मल्लय्या आ पहुंचा और द्वार पर खड़े होकर कहा, "छोटे सरकार !"

राम ने सिर घुमाकर देखा और क्षीण स्वर में धर्मय्या का स्वागत करते हुए कहा, "आइए, मास्टरसाहब !"

धर्मय्या ने राम की ओर देखते हुए पूछा, "कैसी तबीयत है, राम?"

"अच्छी है।" इन शब्दों के साथ राम ने अपने शुष्क चेहरे को दूसरी ओर किया।

धर्मय्या चकित था। इन चन्द दिनों में राम कितना बदल गया है ! पहचानना तक कठिन हो रहा है।

"यह कैसी बीमारी है, राम ?" धर्मय्या ने पूछा।

राम ने कोई जवाब न दिया, पर उसके अधरों पर एक फीकी हँसी फूट पड़ी। उसमें विरक्ति का भाव झलक रहा था।

"कल तुम्हारे पिताजी से मिलने आया था, तभी मुझे यह समाचार मिला।" धर्मय्या ने कहा। यह बात सुनकर राम ने विस्मय से धर्मय्या को देखा। राम जानता है कि जमींदारों के घरों में कोई जानवर भी बीमार हो जाय, तो उसकी खबर पल में सारे गांव में फैल जाती है। ऐसी हालत में एक सप्ताह तक राम चारपाई पकड़े रहा और उसके हितैषियों तक को यह खबर नहीं लगी ! लेकिन राम को क्या पता था कि रोग की जड़ से परिचित जमींदार ने खतरे की कल्पना कर उसके बारे में किसीसे चर्चा करना भी अनावश्यक समझा था।

"लक्ष्मी को एक अच्छा संबंध मिल गया है।"

"ऊं।"

"कल ही हमने मुहूर्त का भी निर्णय किया है। वर मैट्रिक तक पढ़ा-लिखा है।" ये शब्द कहते धर्मय्या ने राम की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाली। उसे लगा कि राम उसकी बातों को सुन नहीं रहा है। उसने

यह भी सोचा कि अन्यमनस्क होना शायद इस बीमारी का लक्षण हो। धर्मय्या ने उठते हुए कहा, "बेटा, अब मैं चलता हूं।"

राम उठ खड़ा हुआ और धर्मय्या को देखते हुए बोला, "अच्छा!"

राम द्वारा दी गई यह विदाई धर्मय्या को कृत्रिम-सी लगी। आकृति के साथ राम का मन भी शुष्क हो गया हो, यही बात सोचते हुए धर्मय्या चलने लगा।

"मास्टरजी!" राम ने पुकारा।

धर्मय्या ने मुड़कर देखा। राम भी धीरे-से कुर्सी पर से उठा और पूछा, "शादी कब है?"

"अभी पन्द्रह दिन हैं, बेटा!"

"अच्छी बात है! शादी ठाठ से कीजियेगा।" राम के इस कथन में अपार व्यथा भरी थी। उसकी आखों में आंसू छलक रहे थे।

"लक्ष्मी के भाग्य को जी भरकर देखने की किस्मत होगी, तो मैं भी शादी में जरूर आ जाऊंगा।" धीरे-से आंसू पोंछते हुए धर्मय्या को वहीं छोड़ राम कमरे से बाहर निकल गया।

राम के भीतर धर्मय्या ने एक विशेष परिवर्तन देखा, पर इस बात का उसे दुःख हुआ कि बीमारी के कारण आंसू बहाने की दुर्बलता का भी उसमें समावेश हो गया है। वह भी कमरा छोड़कर धीरे-से चला गया।

लक्ष्मी के विवाह को अब केवल एक सप्ताह बाकी था।

धर्मय्या रवि को साथ लेकर जमींदार से आर्थिक सहायता पाने आ पहुंचा।

पहली मंजिल पर कॉफी पीते जमींदार को जब यह खबर मिली तो भौंहें चढ़ाते हुए गुनगुना उठे, "अभी सात दिन का समय है। जल्दी ही क्या है!"

आध घंटे बाद जमींदार बाहर आये और सोफे पर बैठते हुए पूछा, "यह युवक कौन है?"

धर्मय्या बोला, "मेरी बहन का लड़का है।"

"इसका नाम रवि है न?" जमींदार ने कहा।

"जीहां !" रवि ने ही उत्तर दिया।

"किसी कारखाने में मिस्त्री का काम तुम्हीं करते हो न ?"

"जीहां !" इस बार भी रवि ने ही उत्तर दिया। जिस काम से वे गये थे, उस बात को गौण करके अनावश्यक चर्चा करना रवि को पसंद न आया।

"अच्छी बात है। कैसे आना हुआ ?"

जमींदार के इस सवाल से धर्मय्या चकित हो गया।

"लक्ष्मी की शादी के लिए आपने जो आर्थिक सहायता देने का वचन दिया था, उसीके लिए आये हैं।" रवि ने कहा।

रवि को साथ ले आने में धर्मय्या ने पहले संकोच किया था। उसने मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना की कि कोई अनिष्ट न हो। परन्तु रवि का यह उत्तर सुनकर धर्मय्या को शान्ति मिली।

"अच्छी बात है। मैंने जो वचन दिया, उसका पालन करूंगा।" रवि से यह बात कहकर धर्मय्या पर दृष्टि गड़ाकर जमींदार ने पूछा, "शादी को अभी कितने दिन बाकी हैं ?"

"सात दिन।"

"मुझे जो रुपये देने हैं, उनकी अभी से जल्दी क्या है ?"

धर्मय्या ने विस्मय से ज़मींदार को देखा। रवि से न रहा गया। उसे बड़ा दुःख हुआ। बोला, "रुपयों के बिना कोई काम नहीं होता। एक हजार रुपये का खर्च जो है !"

"एक हजार रुपये का ?" गंगाधर राव ने आश्चर्य के साथ पूछा।

इस सवाल का किसीने उत्तर न दिया।

जमींदार हँस पड़ा। धर्मय्या और रवि विमूढ़-से उसे ताकते रह गए।

"धर्मय्याजी, धन की परवा न हो तो वह हमारे पास न होगा। इस सूत्र पर आचरण न करने के कारण ही गरीबों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस बात का अनुभव रखनेवाले आप भी लापरवा रहे, इसी-पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। हम जैसे लोग भी शादी के मामलों में बहुत कम खर्च करने की सोचते हैं। एक लड़की की शादी के लिए एक

हजार रुपये...” जमींदार हाथ मलते हुए मुस्करा उठा।

“आज की हालत में मेरे ख्याल से एक हजार रुपया बहुत ही कम कहा जा सकता है।” रवि ने धीरे-से कहा।

“क्या कहा ?” जमींदार ने सिर उठाकर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा।

वार्तालाप कलह का रूप धारण न करे, यह सोचकर धर्मय्या मन-ही-मन अपने आराध्य का स्मरण करने लगा।

“जमींदारों की शादियां तो मैंने नहीं देखीं, पर सुना है कि उनके यहां हवा में उड़नेवाले इत्र के लिए भी एक हजार रुपये पर्याप्त नहीं होते। यह बात आप भी जानते हैं।”

रवि की इन बातों से जमींदार को क्रोध नहीं आया, बल्कि जमींदारों के बड़प्पन पर प्रकाश डालनेवाले उस कथन द्वारा उसे मानसिक आनन्द ही हुआ। इसलिए फिर एक बार मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, “फिर।”

धर्मय्या ने संभलकर दीर्घ निःश्वास लिया।

“आपके कथनानुसार लड़कियों की जैसे-तैसे शादी करनी हो तो रुपयों की क्या जरूरत है ?”

“कैसे ?” जमींदार ने संशयपूर्वक पूछा।

“सुंदर कन्याओं को बूढ़ों और विकलांगों के हाथ सौंप दें, तो उल्टे वे ही रुपयों की मदद कर सकते हैं। परंतु मास्टरजी ने अपनी कन्या के लिए अनुकूल वर की कामना की। इसीलिए मैं कहता हूं कि एक हजार रुपये बहुत ही कम हैं बल्कि नहीं के बराबर हैं,।”

“ओह, तुम बड़े होशियार हो !” ये शब्द कहते हुए रवि की ओर जमींदार ने वक्र दृष्टि डाली। फिर पूछा, “दहेज में कितने रुपये दे रहे हैं ?”

इस बार धर्मय्या ने ही उत्तर दिया, “मंगल-सूत्र-धारण के समय पांच सौ रुपये मांगे हैं -”

“उन लोगों का नाम क्या है ?” जमींदार ने पूछा।

“जी, सरकार ने ज्यादा दहेज न लेने का कानून बनाया है ! काला बाजार का दूसरा नाम अधिक मूल्य है न ! बस, वह भी यही है।”

रवि ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया ।

"अच्छी बात है ! हमें बड़ी प्रसन्नता हुई ।" ये शब्द कहते हुए जमींदार उठ खड़े हुए । रवि ने नहीं सोचा था कि साधारण-सी बात कह देने से जमींदार नाराज हो जायगा । परन्तु धर्मय्या के मन में इस शब्द ने खलबली मचा दी । धर्मय्या जानता है कि जमींदार न केवल जमीन की आमदनी पर निर्भर हैं, बल्कि उनके बड़े-बड़े व्यापार भी चलते हैं ।

"आप लोगों ने मुझसे कितने रुपयों की आशा की है ?" धर्मय्या की ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए जमींदार ने पूछा ।

धर्मय्या उठ खड़ा हुआ । रवि ने बैठे-बैठे ही जवाब दिया, "सारी रकम ।"

"यह गलत है । मैंने इतनी रकम देने की बात कभी आपसे नहीं कही । यह भी मेरा उद्देश्य नहीं कि मैं अपनी बात से मुकर जाऊं । मैं एक सौ रुपये से ज्यादा मदद नहीं कर सकता । ठहर जाइये !" यह कहते जमींदार जल्दी-जल्दी सीढ़ियां चढ़ने लगा ।

धर्मय्या की आंखों में आंसू झलकने लगे । वह कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ ।

"मास्टरजी !" बड़ी आतुरता से रवि ने कहा ।

"मेहरबानी करके तुम कुछ न बोलो, बेटा !" धर्मय्या का कंठ अवरुद्ध हो उठा । रवि निश्चेष्ट रह गया ।

"तुम चुपचाप बैठना चाहो तो बैठो, नहीं तो घर चले जाओ ।" धर्मय्या ने फिर कहा ।

रवि मौन खड़ा रहा । जमींदार अपने हाथ में सौ रुपये लेकर आये ।

धर्मय्या ने आंसू पोछ लिये ।

"लीजिए ।" जमींदार रुपये देने लगे ।

धर्मय्या का हृदय व्यथा से भर गया । उसने समझ लिया कि जमींदार से वाद-विवाद करके शत्रुता मोल लेना कितना खतरनाक होगा ।

"ये रुपये अपने पास ही रहने दीजिए ।" धर्मय्या ने कहा ।

"क्यों ?"

"आप सोचिए। इस गांव में अपना कहनेवाला आपको छोड़ कोई दूसरा नहीं है। आप यह भी जानते हैं कि आपके कहने से ही मैंने इस विवाह के सारे प्रयत्न किये हैं।"

"आप अपनी कन्या का विवाह करना क्या मेरे प्रति उपकार करना मानते हैं ?"

धर्मय्या जानता है कि इस कथन में कितना सत्य है। इसपर भी वह दुखी न हुआ। विनय से बोला, "नहीं-नहीं! परन्तु इस थोड़े समय में किससे पूछने से काम चल सकता है, आप ही बताइए। मेरे हाथ खाली है। आप पर ही मेरा भरोसा है।"

"वाह, यह भी खूब रही! मैंने जो सलाह दी, इसके लिए मुझपर ही एक हजार रुपयों का जुर्माना कर रहे हैं!"

"आप ऐसा मत कहिए।"

"फिर क्या कहूं ? आपको एक हजार रुपये दे दूं, तो मुझे वापस कैसे मिल सकते हैं ?"

इस प्रश्न का उत्तर धर्मय्या ने तत्काल सोच निकाला। व्यथापूर्ण स्वर में बोला, "मैं अपना घर गिरवी रख दूंगा।"

"उस घर के लिए मैं पांच सौ से ज्यादा नहीं दे सकता।"

रवि क्रोधपूर्ण दृष्टि से जमींदार को देख रहा था।

"आपको मंजूर है ?" जमींदार ने पुनः पूछा।

धर्मय्या ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर सिर हिलाकर मौन रह गया।

जमींदार ने मुंशी को बुलाकर बात समझा दी और सौ रुपये धर्मय्या को देने लगा।

"गिरवी का कागज लिखने के बाद पूरी रकम एक साथ दे दीजिए।" धर्मय्या ने कहा।

"नहीं, यह रकम मैं सहायता के रूप में देना चाहता हूं।" जमींदार ने दया दिखाई।

रवि से रहा न गया। बोला, "वह रुपया भी किसी गरीब का घर

गिरवी रखकर दे दीजिए ।"

"रवि तुम अपनी औकात से बढ़कर बात करते हो !" जमींदार ने गरजकर कहा ।

रवि, आगे कुछ कहने को था कि धर्मय्या ने रोक दिया ।

"हां, हां, मैं भी यही सोचता हूं ।" यह कहकर रवि चला गया ।

जमींदार सौ रुपये लेकर ऊपरी मंजिल पर गया ।

धर्मय्या मुंशी के कमरे में जानेवाला था । राम ने उसे देखा और सीधे उसके पास आकर कहा, "बाकी पांच सौ रुपये मैं दे दूंगा, आप लक्ष्मी की शादी कीजिए ।"

धर्मय्या की प्रसन्नता की सीमा न रही । उसके आंखों से आनन्द के आंसू टपक पड़े । मन में राम को दीर्घायु होने का आशीर्वाद देते हुए वह मुंशी के कमरे में चला गया ।

२३ ||

जमींदार ने घर गिरवी रखकर जो पांच सौ रुपये दिये, उन रुपयों से सप्ताह-भर में विवाह का सारा प्रबंध धर्मय्या ने कर दिया । आज रात को विवाह होनेवाला था । धर्मय्या ने गांव के दो सौ लोगों के लिए भोजन का प्रबंध किया । धर्मय्या का घर विवाह की शोभा से जगमगा रहा था । आने-जानेवालों का तांता लगा हुआ था । शांतम्मा को सात दिन से फुरसत ही न मिली थी । रवि सुबह साइकिल पर सवार होता था और दिन-भर घूमता रहता था । मां के अनुरोध पर वह राम को निमंत्रण देने दो बार उसके घर हो आया । सुबह जब गया, तब पता चला कि अभी वह बिस्तर से उठा नहीं है । दूसरी बार राम से मुलाकात हुई ।

रवि ने राम से कहा, "मां ने भोजन करने बुलाया है ।"

"मैं इस समय नहीं आ सकता । रात को विवाह के समय जरूर आऊंगा ।" राम ने उत्तर दिया ।

"अच्छी बात है।" रवि घर लौट आया। उसने अंदाजा लगा लिया कि जो व्यक्ति भोजन करने नहीं आ सकता वह रात के समय विवाह में क्यों आयगा !

रवि को देख शांतम्मा ने उद्विग्नता से पूछा, "क्यों बेटा, राम आ रहा है न ?" दुलहिन की वेष-भूषा में खड़ी लक्ष्मी ने भी बड़ी उत्सुकता से रवि के उत्तर की प्रतीक्षा की।

"मां, तुम भी कैसी भोली हो ? वह क्यों आयगा ?" रवि ने उत्तर दिया।

"फिर एक बार बुलाओ तो ?" बड़ी आशा-भरी वाणी में शांतम्मा ने कहा।

"जरूरत हो तो तुम जाओ।" क्रोध-भरे स्वर में उत्तर देकर रवि साइकिल पर सवार हो दूसरे लोगों को बुलाने चला गया।

रवि के जाने पर शांतम्मा ने लक्ष्मी की ओर देखा। लक्ष्मी सिर झुकाये कमरे के अन्दर चली गई।

अपनी बात रखने के लिए राम सवेरे से रुपयों का इंतजाम करने की बात सोचता रहा, पर उसे कोई उपाय नहीं सूझा। पिता से उसे हर महीने जेब-खर्च के लिए सिर्फ पचास रुपये मिलते हैं। वह एक साथ पांच सौ रुपये कहां से लायगा ? सूटकेस ढूंढ़ा तो केवल पच्चीस रुपये मिले।

धर्मय्या की कठिनाइयों पर द्रवित होकर राम ने पांचसौ रुपये देने का वादा किया था, पर उसे अब मालूम होने लगा कि उस वादे को पूरा करना कितना कठिन है।

संध्या होने को आई। दो-तीन घंटों में लक्ष्मी परायी वधू होने-वाली है। पांच सौ रुपये लिये बिना जायगा तो लक्ष्मी की शादी रुक जायगी। रुक जाना ही अच्छा होगा ! स्वार्थ से वशीभूत राम के मन में यह विचार आया, किन्तु अपने इस विचार पर उसे लज्जा आई। "कैसा द्रोह !" मन में गुनगुनाया। सीढ़ियां चढ़कर मां के कमरे में चला गया।

पार्वतम्मा सहसा राम को देख आश्चर्यचकित हो गई।

"क्या बात है, बेटा ?"

"मां, पांच सौ रुपये चाहिए।"

"किसलिए ?"

राम ने कोई उत्तर न दिया, पर दृढ़तापूर्ण निश्चय को लेकर खड़ा ही रहा। उसके व्यवहार पर पार्वतम्मा डर गई और बोली, "ठहरो, तुम्हारे पिताजी को बुलाती हूं।"

मां का हाथ पकड़कर उसने रोकते हुए कहा, "मां, पिताजी को यह बात बिलकुल मालूम नहीं होनी चाहिए। तुम्हींको देना होगा।"

पार्वतम्मा की समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने कहा, 'आखिर ऐसी जरूरत क्या है ? बताओ तो सही।"

"मैंने लक्ष्मी की शादी में मदद देने का वादा किया है।"

पार्वतम्मा को अपने पति की बातें याद हो आईं। उन्होंने एक बार कहा था, "राम के बिगड़ने का कारण लक्ष्मी हो सकती है।"

"मेरे पास रुपये कहां हैं ?"

"तुमको किसी-न-किसी तरह इंतजाम करना ही होगा, वरना लक्ष्मी की शादी रुक जायगी। उसकी जिन्दगी बरबाद हो जायगी। उसके बरबाद हो जाने पर मेरा जीवित रहना व्यर्थ होगा।" आंखों में आंसू भरकर राम ने विनय के साथ कहा।

पार्वतम्मा राम की अंतिम बात पर चकित हो गई। राम का सिर सहलाते हुए बोली, "तुम कैसे पागल हो गये हो, बेटा ! तुम मेरे कमरे में जाओ ! मैं तुम्हारे पिताजी को समझाकर ले आऊंगी।"

"पिताजी से कहने पर क्या वह दे देंगे ?"

"मैं कोशिश करूंगी।"

अपने पति की आज्ञा के बिना कोई भी काम न करनेवाली पार्वतम्मा की बात सुनकर राम रुपयों के लिए बड़ी व्यग्रता के साथ इंतजार करने लगा।

तोरणों से अलंकृत विवाह-मंडप में बंधु-बांधवों के बीच मंगल-वाद्यों के मध्य लक्ष्मी को वर के हाथ प्रदान किया गया। अपने जामाता के चरण धोते हुए धर्मय्या की दृष्टि राम के आगमन पर केन्द्रित थी।

घंटेभर में वर-पक्ष वालों के हाथ पांच सौ रुपये अर्पित करने होंगे।

एक स्तंम्भ से सटकर विरक्त भाव से बैठे रवि के पास जाकर धर्मय्या ने पूछा, "क्या राम आ गया?"

"नहीं तो।" रवि ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उत्तर दिया।

"क्या बात है?"

"पांच सौ रुपये?"

"कौन देनेवाले हैं?"

रवि का यह सवाल सुनकर धर्मय्या का चेहरा पीला पड़ गया। उसने सोचा था कि यह भेद रवि के सामने प्रकट हो गया, तो काम विगड़ जायगा। इसीलिए उसने गुप्त रखा था।

शांतम्मा ने उसी समय धर्मय्या के निकट आकर पूछा, "क्या अभी तक नहीं आया?"

"नहीं।"

"तो क्या किया जाय?"

धर्मय्या मौन।

"फिर एक वार रवि को भेजूं?" शांतम्मा ने पूछा।

रवि को राम के पास भेजना धर्मय्या को पसंद नहीं है, परन्तु उस हालत में वह स्वयं विवाह-मण्डप को छोड़ बाहर नहीं जा सकता था। इस बीच किसीने धर्मय्या को पुकारा। धर्मय्या शांतम्मा से यह कहकर कि 'रवि को जल्द भेज दो', वहां से चला गया।

शांतम्मा ने रवि को समझाते हुए कहा, "तुम राम से रुपये ले आओ। वह न आये तो कोई बात नहीं, पर रुपये जरूर ले आना।"

रवि साइकिल लेकर चल पड़ा। उसमें बत्ती तक नहीं थी।

राम आधे घंटे तक अपनी मां की प्रतीक्षा करता रहा। वह पागल की तरह पैर पटकते हुए कमरे में टहलने लगा।

"राम!" जमींदार की आवाज सुनकर राम ने घूमकर देखा।

"पांच सौ रुपये तुम्हें किसलिए चाहिए?"

"मां ने नहीं बताया?"

"बताया है, लेकिन मैंने धर्मय्या से पहले ही कह दिया है।"

"मैंने बाकी पांच सौ रुपये देने का वचन दिया है।"

जमींदार हँस पड़ा। राम का मन विकल था। पिता के प्रति उसके मन में जो आदर-भाव था, वह टूटता जा रहा था।

"यह हँसी का समय नहीं है। मेरी इज्जत बचानी है, तो दे दीजिए।"

"मेरी बेइज्जती करने के लिए तुम यह काम करना चाहते हो?"

"सो कैसे?"

"मैंने जब मना किया तब तुम्हारे देने का क्या मतलब है? जो मेहनत करके कमाता है, उसे रुपयों की कीमत मालूम होती है। तुम कमाते नहीं हो, ऐसी हालत में वादा करने का अधिकार तुमको किसने दिया? सुनो, पांच सौ तो दूर, पांच पैसे भी तुम मुझसे नहीं पा सकते। तुम जैसे लोगों के हाथों में मेरी जमीन-जायदाद रहे तो, कितने समय तक वह टिक सकती है?" ये शब्द कहते-कहते जमींदार कमरे से बाहर चले गए।

"पिताजी!" राम के कंठ में व्यथा थी। जमींदार ने मुड़कर राम की ओर देखा।

"आपको पांच सौ रुपये देने होंगे!"

"मैं नहीं दूंगा।"

"मैं लूंगा।" राम दृढ़ निश्चय के साथ कमरे से बाहर आने लगा। जमींदार ने उसका हाथ पकड़कर जोर से धकेल दिया। राम का सिर कुर्सी से जा टकराया। वह नीचे गिर पड़ा।

जमींदार दरवाजा बंदकर चले गये।

रवि पसीने से लथपथ जमींदार के फाटक तक पहुंचा और पहरेदार के रोकते रहने पर भी परवा किये बिना भीतर घुस गया।

जमींदार उसी समय सीढ़ियां चढ़ रहे थे।

"राम!" रवि ने पुकारा।

रवि की आवाज सुनकर जमींदार घूम पड़े।

राम अपने कमरे का दरवाजा खटखटाते हुए चिल्ला पड़ा "रवि!"

जमींदार का ख्याल किये बिना रवि ने दरवाजा खोल दिया।

"पांच सौ रुपये कहां हैं ?" हाथ बढ़ाकर रवि ने क्रोधपूर्ण स्वर में पूछा।

राम ने सिर झुका लिया।

"लक्ष्मी की शादी रुकने जा रही है।" रवि गरज उठा।

"पिताजी ने रुपये नहीं दिये।" राम ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"रुपये नहीं थे तो वचन क्यों दिया ?"

"देना चाहता था।"

"तो फिर दो !"

"नहीं हैं।"

रवि का क्रोध खौल उठा। उसने खींचकर राम के गाल पर एक चांटा मारा। राम थप्पड़ खाकर गिर पड़ा।

विवाह-मण्डप में वर वधू के गले में मंगल-सूत्र बांधने खड़ा हो गया, पर दहेज न मिलने के कारण अपने पिता का आदेश पाकर उसने अपमान के भार से दबे धर्मय्या के मुंह पर मंगल-सूत्र फेंक दिया और विवाह-वेदिका से उठकर चल दिया। उसके साथ वर पक्षवाले सब चले गये।

नववधू लक्ष्मी को सौभाग्यवती नारियां कमरे के भीतर ले गईं। धर्मय्या अपने हाथों में मुंह ढांपकर आंसू बहाने लगा।

शांतम्मा शोकमूर्ति बनकर धर्मय्या के निकट आ खड़ी हुई।

धर्मय्या ने अधीर होकर पूछा, "लक्ष्मी क्या कर रही है ?"

शांतम्मा निरुत्तर खड़ी रह गई।

"मैंने अपनी बेटी का गला घोंट दिया।" ये शब्द कहते हुए धर्मय्या फूट पड़ा।

"हम क्या कर सकते हैं, भैया ! हमें ये दुर्दिन भी देखने थे !" शांतम्मा रुद्ध कंठ से बोली।

"करेंगे क्या ? इस अपमान के भार से जीने की अपेक्षा हम दोनों जहर खाकर जान दे देंगे।"

शांतम्मा कांप उठी। वह इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय सोच रही थी। थोड़ी देर रुककर बोली, "भैया !"

"क्या है, बहन ?"

"इसी शुभ मुहूर्त में लक्ष्मी का विवाह रवि से कर दें तो ?"

"शांतम्मा !" दुखातिरेक में हठात् आनंद का अनुभव करते हुए, शांतम्मा के हाथ पकड़कर, धर्मय्या बोला, "मेरी लक्ष्मी के प्राण बचाकर मुझे इस अपमान से उबारो, बहन !"

शांतम्मा लक्ष्मी के पास गई। वह चारपाई पर बेहोश पड़ी थी। उसके मुंह पर शांतम्मा ने ठण्डा पानी छिड़का। थोड़ी देर में लक्ष्मी ने आंखें खोल दीं।

"लक्ष्मी ! तुम्हें अपने पिता को बचाने के लिए ही सही, रवि के साथ शादी करनी होगी !" शांतम्मा ने उत्कंठा से कहा।

"जैसी आपकी इच्छा !" ये शब्द कहते हुए लक्ष्मी ने फिर आंखें मूंद लीं।

शांतम्मा से खबर पाकर धर्मय्या विवाह-मण्डप में लौट आया। कुछ लोग जा चुके थे, लेकिन गाजे-बाजे वाले तथा कुछ इने-गिने लोग विषादपूर्ण भंगिमा से अब भी खड़े थे।

"आप लोग कृपा करके जाइये मत। मेरी लक्ष्मी का विवाह अभी होगा।" धर्मय्या के मुंह से ये शब्द सुनकर सब विस्मय के साथ एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

मल्लय्या साइकिल लेकर धर्मय्या के पास आया और बोला, "बड़े सरकार ने यह साइकिल आपको देने को कहा है।"

"रवि कहां है ?" धर्मय्या ने गरजते स्वर में पूछा।

"पुलिस के सिपाही उसे थाने ले गये हैं।" नौकर मल्लय्या ने जवाब दिया।

धर्मय्या बेहोश होकर चबूतरे के पास गिर पड़ा।

२४ ||

रवि की गिरफ्तारी बड़े ही विचित्र ढंग से हुई। रवि को गुस्से में लाल-पीले होकर आते जमींदार ने देखा और राम के साथ उसका वार्तालाप भी सुना। उसने तुरत पुलिस को फोन करके कहा कि कोई दुष्ट घर में आ घुसा है, हालत नाजुक है।

राम कुर्सी पर गिरकर बड़ी देर तक वेहोश पड़ा रहा। रवि चुपचाप देखता रहा। राम हिला-डुला तक नहीं। उसका पारा चढ़ता ही गया। हॉल में आकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, कोई दिखाई न पड़ा। घड़ी ने नौ बजा दिये। रवि को लक्ष्मी के विवाह की याद आयी। साइकिल लेकर फाटक के पास पहुंचा। तभी सामने पुलिस की गाड़ी आ खड़ी हुई।

भोंपू की आवाज़ सुनकर जमींदार नीचे उतर आये। उन्होंने रवि की ओर संकेत किया कि वही अपराधी है। गवाह के रूप में कुर्सी पर वेहोश पड़े राम को दिखाया और रवि को गिरफ्तार करा दिया।

पुलिस उसे थाने में ले गई।

रवि के गिरफ्तार होते ही जमींदार विजय की खुशी में हँसने लगा और मल्लय्या को साइकिल के साथ यह समाचार धर्मय्या को देने भेज दिया।

राम ने अपनी मां के हाथ से पानी लेकर पिया और कुर्सी पर जा बैठा।

"क्या चोट आ गई ?" जमींदार ने पूछा।

राम कुर्सी से उठते हुए बोला, "नहीं।"

उसने चारपाई पर लेटने का प्रयास करते हुए पूछा, "रवि कहां है ?"

"क्यों ?" जमींदार ने प्रश्न किया।

"कुछ नहीं, उससे क्षमा मांगना चाहता हूं।" राम चारपाई पर लेट गया।

रवि की गिरफ्तारी का समाचार पाकर धर्मय्या हतप्रभ हो गया। उसने उसी दिन जो चारपाई पकड़ी तो फिर उठने का नाम न लिया। ज्वर की तीव्रता में वह बार-बार विवाह की बातें बड़बड़ाता रहा।

तीसरे दिन वैद्य ने धर्मय्या की परीक्षा करके घोषित किया कि वह सन्निपात ज्वर से पीड़ित है।

शांतम्मा आपाद-मस्तक कांप उठी। उसने अपने पति के मुंह से इस ज्वर की भयंकरता के बारे में कई बार सुना था।

उसे दुःखी देखकर वैद्य ने सांत्वना के शब्दों में समझाया, "मैं कुछ गोलियां भेज देता हूं। अदरक के चूर्ण में मिलाकर हर दो घंटों में एक बार देती जाओ। आगे भगवान की इच्छा!" वैद्य चला गया।

लक्ष्मी धर्मय्या की चारपाई के पास रात-दिन एक करने लगी। शांतम्मा ने उसे समझाया कि वह खाना खाये, पर वह बिना खाये-पिये पिता की सेवा में लगी रही।

शांतम्मा को बार-बार रवि की याद सताने लगी। दुःख की इस घड़ी में रवि पास में होता तो क्या ही अच्छा होता।

एक दिन संध्या के समय हठात् शांतम्मा लक्ष्मी से बोली, "लक्ष्मी, मैं अभी आती हूं। तुम दवा देती रहो।"

हॉल में बैठे जमींदार ने अंधकार को चीरनेवाली बत्तियों की जगमगाहट में देखा कि सफेद वस्त्रों में एक नारी-मूर्ति उसकी ओर बढ़ी चली आ रही है।

जमींदार ने शांतम्मा को पहचान लिया, मगर चुप रहे। फिर भी शांतम्मा हिम्मत करके उनके सामने जा खड़ी हुई।

"आप यहां किसलिए आई हैं?"

"मेरे रवि को गिरफ्तार कराने का क्या कारण है?"

"क्योंकि उसने अपराध किया था।"

"कौन-सा अपराध?"

"यह बात सरकार को बताई जायगी।"

"मां होकर क्या मैं सुन नहीं सकती ?"

जमींदार ने हँसकर कहा, "अगर रवि के पिता होते तो मैं उनको बता देता।"

"मैं आपसे एक याचना करने आई हूं।"

"क्या ?"

"लक्ष्मी की शादी रुक गई है।"

यह बात जमींदार को उसी रात मालूम हो गई थी।

"मेरे भैया को सन्निपात हो गया है।" शांतम्मा ने मौन भंग करते हुए कहा।

"ओहो, ऐसी बात है!"

"लक्ष्मी की हालत भी खराब है!"

"क्यों ?"

जमींदार के इस सवाल पर शांतम्मा को क्रोध आया। पर अपने पर नियंत्रण करते हुए बोली, "उस दिन से वेचारी ने खाना नहीं खाया।"

"तो मैं क्या कर सकता हूं ?"

"रवि को रिहा करवा दीजिए।"

"यह असंभव है।"

"आपके लिए यह संभव है।"

"मुझसे नहीं हो सकता, शांतम्माजी ! अपराध के लिए अगर दण्ड न होता तो यह दुनिया कभीकी मिट जाती। कितने लोगों पर आपका लड़का अपना जोर दिखलाता रहता है ?" तीक्ष्ण शब्दों में जमींदार ने कहा।

शांतम्मा का शांत स्वभाव विद्रोह कर उठा। उसने समझ लिया कि इस वाक्य में कैसा विष-भरा असत्य छिपा हुआ है।

"आप कितने दिनों तक परायों की संपत्ति पर दिन काटना चाहती हैं ?" जमींदार ने व्यंग्य किया।

"चुप रहिये ?" शांतम्मा क्रोध से कांप उठी।

"आप सत्य पर पर्दा डाल रहे हैं। किसपर मेरे बेटे ने जोर आजमाया है ? कौन दूसरों को लूटकर जी रहा है ? आपने जबर्दस्ती

मेरे बेटे को जेलखाने भेज दिया है। मेरे भाई को धन का लोभ देकर उनकी कन्या का विवाह रचवाया और ऐन मौके पर धोखा दिया! उस लड़की की जिन्दगी को तबाह कर डाला! भैया के अंतिम दिन देखने का अवसर क्या अपने पैदा नहीं किया?"

"शांतम्माजी!" जमींदार चीख उठा। उस गरज से सारा हॉल गूंज उठा। पार्वतम्मा सीढ़ियों के पास खड़ी ताकती रही।

"यहां से चली जाइए!" द्वार की ओर संकेत करते हुए जमींदार धीरे-से बोले।

"मैं नहीं जाऊंगी!"

"अच्छी बात है।" ये शब्द कहते हुए वह सीढ़ियों की ओर बढ़े।

शांतम्मा को कुछ न सूझा। इस हालत में लजाना भी उचित नहीं था। वह भी सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

जमींदार ने मुड़कर देखा। उनकी आंखें अंगारों की भांति जल रही थीं।

"मेरे रवि को बचाइए।" शांतम्मा विलाप कर उठी।

"अभी तो उसके प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है।"

"मैं जानती हूं कि उसके प्राणों के लिए कोई खतरा नहीं है, लेकिन उसके घर में न रहने से और लोगों के प्राणों के खतरे में पड़ जाने का डर है। उसे जल्द छुड़वा दीजिए।"

जमींदार क्रोधावेश में भर उठे। उन्होंने एक सीढ़ी इस तरह पार की, मानों शांतम्मा पर टूट पड़ेंगे, फिर अपने स्वर को और ऊँचा करके बोले, "मैंने बताया, नामुमकिन है। लगता है, तुम भी अपने बेटे की जैसी मां हो। इसकी सजा भोगोगी! चली जाओ।"

शांतम्मा घबरा गई। जमींदार को आगे बढ़ते देख उसने एक कदम पीछे हटाया कि वह फिसल पड़ी और सीढ़ियों पर लुढ़कते-लुढ़कते हॉल में जा गिरी।

जमींदार उस दृश्य को लापरवाही से देखता हुआ सीढ़ियां पार कर के ऊपर गया और अपनी पत्नी पार्वतम्मा से बोला, "उसे बाहर भेजकर फाटक पर ताला लगवा दो।"

राम दौड़कर शांतम्मा के पास आ बैठा। शांतम्मा का सिर फूट जाने से खून बह रहा था। वह अचेत अवस्था में सीढ़ियों की ओर ताक रही थी।

"थोड़ा पानी और कपड़ा ले आओ।" राम ने नौकरानी से कहा।

"इसने बड़ी भूल की है!" पार्वतम्मा ने अपने पति की करनी का समर्थन करते हुए कहा। राम ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा।

राम ने सोचा कि अपने पति की भूल को छिपाकर सज्जनों को अपराधी ठहराने की हिम्मत करनेवाली स्त्री पति-भक्ति को पवित्र माने और अपनेको पतिव्रता कहे तो कितना अन्यायपूर्ण है!

"मनुष्य के स्वभाव से परिचित होने पर जरा संभलकर व्यवहार करना चाहिए था।" पार्वतम्मा ने शांतम्मा के मस्तक से बहते रक्त को देखते हुए कहा।

शांतम्मा ने पार्वतम्मा पर वेधक दृष्टि डाली।

"इंसान के साथ इन्होंने इंसान बनकर ही बात की, परन्तु इनको क्या पता था कि इंसानों में पशु भी छिपे रहते हैं।" राम ने कहा।

"क्या कहा?" पार्वतम्मा ने गरजकर पूछा।

राम उठकर अलमारी के पास गया। दवा और रूई ले आया। दासी के हाथ से पानी और कपड़ा लेकर घाव पर दवा लगाई और पट्टी बांध दी।

"मल्लय्या, मोटर की चाबी ले आओ।"

पार्वतम्मा उठकर ऊपरी मंजिल पर जाने लगी।

"मां!" रामने पुकारा।

"मैंने जो भूल की, उसके लिए रवि ने मुझे दण्ड दिया, पर रवि को गिरफ्तार कराने की क्या जरूरत थी पिताजी को?"

"धीरे-से बोलो, बेटा! तुमसे अधिक अच्छी तरह वह सारी बातें जानते हैं। उन्हें सदा ध्यान रहता है कि जो अपराध करता है, उसे दण्ड अवश्य भोगना चाहिए।"

"ध्यान हो तो अच्छा ही है, पर तुम्हारे कहे अनुसार इस भूल के लिए भी दण्ड होगा न!" ये शब्द कहते हुए राम ने पार्वतम्मा की ओर

देखा।

शांतम्मा धीरे-से उठने लगी। राम भी लंगड़ाते हुए उसके निकट आया और हाथ बढ़ाते हुए बोला, "मां, मैं तुम्हें सहारा देता हूं।"

"नहीं बेटा!" शांतम्मा ने गद्‌गद् कठ से उत्तर दिया और धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए अपने आंसू पोंछ लिये। वह दरवाजा पार करने लगी। राम भी उसके पीछे-पीछे चला।

यह दृश्य देखकर पार्वतम्मा को ऐसा लगा, मानों उसकी आंखों के सामने अंधेरा फैलता जा रहा है और आंखें पथरा रही हैं।

वह मुड़कर सीढ़ियों पर चढ़ने लगी।

२५ ||

शांतम्मा को पिछली सीट पर बिठाकर राम स्वयं गाड़ी चलाने लगा।

गाड़ी मन्द गति से जा रही थी।

राम ने कहा "मां, क्या डाक्टर के पास चलें!"

"नहीं, बेटा!"

"घाव दर्द करेगा।"

"मैं अपने घाव की चिंता नहीं करती, परन्तु..."

"तो फिर किसकी चिंता करती हो?"

शांतम्मा उत्तर दे कि उससे पहले ही गाड़ी धर्मय्या के घर के सामने जा रुकी। राम ने दरवाजा खोला। शांतम्मा उतर पड़ी और बोली, "अपने सवाल का जवाब चाहते हो तो अंदर चले आओ।"

इतना कहकर शांतम्मा भीतर चली गई।

धर्मय्या के कमरे में दीपक टिमटिमा रहा था।

राम का मन घर में कदम रखने से झिझकने लगा। अपराधी का भांति सिर झुकाकर खड़ा रहा।

"बेटा, तुम इस परिवार के लिए नये नहीं हो। संकोच क्यों करते हो ? अपने मास्टर को एक बार देखते जाओ !" ये शब्द कहते हुए शांतम्मा ने धर्मय्या के कमरे में कदम रखा।

लक्ष्मी अपने पिता की खाट की पाटी पर सिर झुकाये बैठी थी।

"लक्ष्मी !" शांतम्मा ने कहा, "राम आया है।" शांतम्मा के मुंह से यह वाक्य सुनकर लक्ष्मी की आंखें खुली रह गईं। राम को देखा और झट आंखें बन्द कर लीं। उसकी आंखों से आंसू टपक रहे थे।

राम ने देखा, लक्ष्मी सूखकर कांटा हो गई है। धर्मय्या चारपाई से लग गया है। वह बड़बड़ा रहा है।

राम से रहा न गया। उसने रुद्ध कंठ से पुकारा, "लक्ष्मी !"

लक्ष्मी ने सिर उठाया। उसकी आंखें गीली थीं। उसकी दृष्टि में ईर्ष्या या द्वेष न था, पर कोई डरावनी शांति झलक रही थी।

"मुझे क्षमा करो, लक्ष्मी !" राम ने करुण स्वर में कहा।

राम आंसू पोंछते हुए धर्मय्या की चारपाई के पास बैठ गया, फिर कहा, "मैंने तुम्हारे साथ द्रोह किया है।"

लक्ष्मी की दृष्टि में शांतिपूर्ण कान्ति दमक रही थी। उसका दिल पिघल उठा।

"मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है, उसके बदले में तुम मुझे जैसा भी दण्ड दो, मैं भोगने को तैयार हूं, लक्ष्मी। अगर तुम कहोगी तो मैं दण्ड के रूप में प्राण-त्याग कर सकता हूं।"

राम के मुंह से ये शब्द सुनकर शांतम्मा भय से उसकी ओर देखने लगी।

"मैंने हृदय से लक्ष्मी को प्यार किया है। लेकिन मुझसे छिपाकर लक्ष्मी की शादी का निर्णय किया गया।" राम ने कहा।

"किसे किससे कहना चाहिए था ? यह मत भूल जाओ कि लक्ष्मी लड़की है, वह अपने पिता से कैसे कह सकती थी कि वह तुम्हें प्यार करती है, जबकि मर्द होकर भी तुमने अपने पिता से कहने की हिम्मत नहीं की ! लेकिन यह सत्य है कि लक्ष्मी ने तुमको अपना सर्वस्व मान-कर प्यार किया है। यदि वह ऐसा किसी दूसरे से करती तो वह अपने प्राणों

की बाजी लगाकर उसीसे शादी करता। तुम्हें दण्ड देने का अगर तुमने मुझे अधिकार दिया होता तो वह दण्ड सचमुच बड़ा भयंकर होता!" ये शब्द कहते-कहते शांतम्मा आवेश में खड़ी हो गई।

शांतम्मा की बातें सुनकर राम चकित हो गया। वह सन्तोषपूर्ण स्वर में बोला, "मैं जानता हूं मां, तुम मुझे कैसा दण्ड देतीं। मैंने जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त हेतु मैं तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कहता हूं कि मैं लक्ष्मी से विवाह करूंगा।" इन शब्दों के साथ शांतम्मा के चरणों का स्पर्श करते हुए उसने अपने आंसुओं से उनका अभिषेक किया।

शांतम्मा ने आनन्दपूर्ण हृदय से राम के मस्तक का स्पर्श किया और आशीर्वाद दिया।

कमरे के भीतर लक्ष्मी ने गहरी सांस ली। हवा के झोंके ने किवाड़ बन्द कर दिये। खिड़कियां टकराने लगीं। कमरे में लालटेन झूलने लगी। धर्मय्या के कमरे में से कोई भयंकर आवाज गूंज उठी।

लक्ष्मी का हृदय भय से कांप उठा। बिजली की भांति वह कमरे में भाग गई।

"पिताजी!" लक्ष्मी चीख उठी।

शांतम्मा ने धर्मय्या के कमरे में प्रवेश कर जोर से पुकारा, "भैया!"

राम अवाक् होकर धर्मय्या के निस्पंद शरीर को देखता रहा।

वायु के वेग से दीपक बुझ गया।

२६ ||

जिस निस्स्वार्थ प्राणी के आशीर्वादों के परिणाम-स्वरूप उत्तम शिक्षा पाकर कुछ मानव ऊंचे पद प्राप्त करते हैं, विज्ञ बनते हैं, उस प्राथमिक शिक्षक का स्मरण होता ही है। इस बात का विस्मरण नहीं हो सकता कि आधार-शिला वही है, शिष्यों के जीवन में भले ही

परिवर्तन हो जाय और उनके साथ जगत में भी, पर गुरुदेव की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उनके पास विद्यार्थी आते हैं, शिक्षारूपी भिक्षा ग्रहण कर खुशी के साथ चले जाते हैं, किन्तु उन्नत अवस्था में पहुंचा हुआ एक भी विद्यार्थी अपने पुराने शिक्षक के जीवन को अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न नहीं करता। संभवतः उसे यह कोई बड़ी समस्या प्रतीत नहीं होती, परन्तु देश व जाति का शिक्षा-प्रदाता वह निर्धन शिक्षक भूतकाल के वैभव को देख प्रसन्न हो उठता है, वर्तमान पर दुःखी होता है और भविष्य के उत्तरदायित्व पूर्ण होने की कामना करता है और अपनी आशा अधूरी लिये, अपने अभाव के हाथों में अपने परिवार को समर्पित कर, अपनी सन्तान के भविष्य की बात देश पर छोड़, अश्रु बहाते हुए सदा के लिए आंखें बन्द कर लेता है।

धर्मय्या की जिन्दगी भी इसी प्रकार समाप्त हो गई। उसका क्रियाकर्म भी पूरा हो गया।

चार दिन के बाद अदालत में हाजिर होनेवाले रवि को हत्यारे व लुटेरे के रूप में साबित करने की जमींदार का वकील जी-जान से कोशिश करने लगा।

रवि की पैरवी के लिए कोई वकील नहीं था।

मुकदमे की सुनवाई के दिन रवि को अदालत में अपना कोई दिखाई न दिया। धर्मय्या तक न आया। रवि के लिए यह आश्चर्य की बात थी!

"तुम्हारा कोई गवाह है?" न्यायाधीश ने पूछा।

रवि ने कोई उत्तर न दिया। सामने वकील के बाजू में बैठे जमींदार की ओर देखा। उसका चेहरा क्रोध से लाल हो उठा।

"कोई नहीं है।" रवि ने कह दिया।

"मैं हूं!" उस जन-समूह में से तभी एक कंठ सुनाई दिया।

राम कठघरे के सामने आ खड़ा हुआ। सबने आश्चर्य के साथ देखा। जिसने रवि से चोट खायी थी, वही उसके पक्ष में गवाही देने आये तो क्या आश्चर्य की बात नहीं थी!

राम ने कटघरे में प्रवेश करने के बाद आदि से अंत तक सारी

बातें न्यायाधीश के सामने कह दीं।

"यह मुकदमा बड़ा अजीब-सा मालूम होता है। रवि पर जो आरोप लगाया गया है, वह निराधार है।" यह कहते हुए न्यायाधीश ने मुकदमा खारिज किया और उठ खड़ा हुआ।

गंगाधर राव का सिर अपमान के भार से दब गया। उसने क्रोध-भरी दृष्टि राम की ओर दौड़ायी।

राम अपने पिता की नजर से बचकर बाहर आया। जमींदार के वहाँ पहुंचते ही गाड़ी आ गई।

"बैठो!" जमींदार गरज उठे।

राम गाड़ी में एक ओर सिमटकर बैठ गया।

"तुमने रवि को क्यों बचाया? क्या शांतम्मा ने कुछ कहा था?"

"नहीं।"

"फिर? सत्य बताने के लिए अदालत में आये?"

"झूठी गवाही देने के लिए आपने मुझे अदालत में बुलाया था, किंतु रवि के प्रति अन्याय होते देखकर मुझे सच कहना पड़ा। रवि को दोषी ठहराने से आपका क्या लाभ था?" राम ने पूछा।

"बकवास बन्द करो।" जमींदार ने चीखकर कहा। गाड़ी घर पहुंची।

अचानक सामने रवि को देखकर लक्ष्मी गद्गद् कंठ से बोली, "रवि!"

शांतम्मा पानी का घड़ा उतारते हुए चिल्ला पड़ी, "बेटा!"

लक्ष्मी की आंखों में आंसुओं की झड़ी देखकर रवि को बड़ा दुख हुआ।

"भैया अब नहीं रहे।" रोते हुए शांतम्मा बोली।

"मां!" रवि चिल्ला पड़ा।

उसकी शिराएं फूल उठीं। जमींदार की आकृति उसके मानस-पटल पर विकृत रूप में घूमने लगी।

"मास्टरजी!" वेदना भरे स्वर में रवि ने कहा।

"जमींदार ने धर्मय्या की बलि ली, वरना यह तबाही न होती।"

रवि के एक दोस्त ने सहानुभूति जतलाई ।

रवि उठ खड़ा हुआ । शांतम्मा भयभीत हो उसके पास आई ।

"कहां जाते हो ?"

"वहीं जहां से अभी लौटा हूं ।"

"माने ?"

"जेलखाने में ।" रवि ने आवेश से आसमान की ओर देखते हुए कहा ।

"रवि !" कहते हुए शांतम्मा ने उसका हाथ पकड़ लिया ।

रवि की आंखों में आंसू चमक उठे ।

"मां ! मास्टरजी का ऋण चुकाने के पहले ही वह चल बसे । उन्होंने कोई अपराध नहीं किया । ऐसा कठोर दण्ड उन्हें क्यों मिला ? जिसने मास्टरजी के साथ यह अपराध किया, उसे दण्ड देना उचित ही है ।" रवि अपनी मां के हाथों को छुड़ाने लगा ।

"इस बार जमींदार का काम तमाम होगा ।" रवि के एक दूसरे दोस्त ने कहा ।

"तुम दोनों यहां से चले जाओ । तुम्हारी बातें रवि को और भी उत्तेजित कर रही हैं ।" शांतम्मा ने समझाया ।

रवि के मित्र चुपचाप चले गये । शांतम्मा ने किवाड़ बन्द कर लिये ।

"स्नान करके भोजन करो, बेटा !"

"मुझे जरूरत नहीं है, मां ।"

"तुम गंगाधर राव का क्या करना चाहते हो, मैं भी तो सुनूं ।"

"मास्टरसाहब की मृत्यु का दंड देना चाहता हूं ।"

"इससे पहले एक काम करोगे तो अच्छा होगा !"

"क्या ?" रवि ने बड़ी आतुरता से पूछा ।

"वह दंड पहले मुझे दे दो ?"

"मां !" रवि पागल की तरह चिल्ला पड़ा ।

शांतम्मा के अनुरोध पर रवि ने थोड़ा भोजन किया । फिर लेट गया । पर उसे नींद नहीं आई ।

वह अचानक उठ बैठा।

शांतम्मा धीरे-से कमरे में आई और पूछा, "उठ क्यों गये ?"

"यों ही।" रवि फिर लेट गया।

शांतम्मा जानती है कि रवि जो भी निश्चय करता है, उसकी पूर्ति किये बिना वह नहीं मानता। उसके कार्य के द्वारा होनेवाले परिणाम की कल्पना करके शांतम्मा कांप उठी।

फिर न मालूम कैसे शांतम्मा ऊंघ गई। गली में कुत्तों का भूंकना सुनकर वह उठ बैठी। देखती क्या है, रवि चारपाई पर नहीं है !

"लक्ष्मी !" शांतम्मा ने पुकारा।

लक्ष्मी शांतम्मा की आवाज सुन चौंक उठी और उसके पास आई।

"रवि कहां है ?"

लक्ष्मी बेचारी को क्या पता था ! मौन रही।

"उसने जो सोचा था, वह जरूर करेगा। चलो।" यह कहते हुए शांतम्मा ने लक्ष्मी का हाथ पकड़ा।

"मां, मैं यहीं हूं।" रवि की आवाज सुनकर दोनों रुक गईं। रवि धर्मय्या के कमरे से आया।

उसने अपनी पेटी से छुरी निकाली थी, और कमर में खोंस ली थी। इसे अपनी मां से छिपाते हुए वह भयविह्वल हो देखता रहा।

"कमरे के अन्दर क्यों गये ?" शांतम्मा ने पूछा।

"मेरा मन अशांत है, मां। सोचा, मास्टरजी के रहने से पवित्र हुए उस कमरे में बैठने से शायद मन को शांति मिले।"

रवि के मुंह से यह बात सुनकर शांतम्मा के नेत्र सजल हो उठे। लक्ष्मी को साथ ले वह अपने कमरे में चली गई।

आधी रात हो चुकी थी। रवि ने सोचा, शांतम्मा यह सोचकर सोती होगी कि मैंने अपना प्रयत्न त्याग दिया है। वह धीरे-से उठा। दबेपांव दरवाजे के पास पहुंचकर कुंडी पर हाथ रखा।

"रवि ! मेरी बात सुन लो, बेटा ?"

शांतम्मा की आवाज सुनकर रवि ठिठककर रह गया। रवि ने चारपाई के निकट जाकर देखा। वह बड़बड़ा रही थी। इसलिए

वह कुंडी हटाकर बाहर चला गया और जमींदार के महल की चहारदीवारी लांघकर भीतर पहुंचा। महल के द्वार बंद थे। खिड़की में से झांका, राम सो रहा था। उसने मन-ही-मन उसका अभिनंदन किया। फिर ऊपरी मंजिल पर जाने का कोई मार्ग न देखकर खंभे के सहारे वह गंगाधर राव के कमरे तक पहुंचा। जमींदार पलंग पर लेटकर खुर्राटे ले रहा था। पास में एक दूसरी चारपाई पर पार्वतम्मा सो रही थी।

कांच लगी खिड़की में रवि ने लात मारी।

शीशे के टूटने से 'झन' की आवाज सुनकर पार्वतम्मा चौंक उठी। रवि को देखकर वह चिल्ला पड़ी।

जमींदार जाग पड़ा। रवि कमरे के अन्दर कूद पड़ा। पार्वतम्मा नीचे दौड़ गई। पुलिस को फोन करके सारे दरवाजे खोल दिये।

जमींदार ने हिम्मत हारे बिना कहा, "ओह, तुम हो!" और तकिये के नीचे हाथ बढ़ाया।

बिजली की भांति रवि गंगाधर राव पर कूद पड़ा और उसकी छाती में छुरा भोंक दिया। उस खतरे की हालत में भी पूरी ताकत से जमींदार ने रवि को लात मारी।

बायें हाथ से छुरे को पकड़कर जमींदार पीड़ा से कराह उठा। दायें हाथ में पिस्तौल लेकर बोला, "रवि, मैं अपनी मौत के पहले तुम्हारी मौत देखूंगा।"

जमींदार ने रवि पर निशाना साधा।

सहसा शांतम्मा को देखकर रवि चिल्ला उठा, "मां, तुम बीच में मत आओ!"

"ठांय।" की ध्वनि के पहले ही शांतम्मा ने रवि को एक ओर ढकेल दिया। गोली शांतम्मा के भाल पर लगी। जमींदार गोली चलाकर लुढ़क पड़े।

शांतम्मा रवि की बांहों में गिर पड़ी।

पिस्तौल की आवाज सुनकर नौकर-चाकर, पार्वतम्मा सब घटना-स्थल पर आ पहुंचे।

पार्वतम्मा अपने पति की छाती से बहनेवाली खून की धारा देखकर चिल्लाकर बेहोश हो गई।

राम ने पिता के हाथ से पिस्तौल ले लिया और प्रतिशोध की भावना से रवि पर निशाना साधा।

पलभर में लक्ष्मी ने राम के हाथ का पिस्तौल ले लिया। राम ने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा। उसकी आंखों में चमकनेवाले भावों को पढ़ा।

वेदना से कराहते जमींदार को देखकर राम शोकपूर्ण कंठ से बोला, "पिताजी !"

शांतम्मा उन्मादिनी की भांति जमींदार की ओर देख रही थी। उसने सहानुभूति-पूर्ण शब्दों में कहा, "मैं अपने बेटे की करनी पर पछताती हूं, लेकिन मैं क्या कर सकती हूं ? सुनिए, अब भी सही, आप सच बता दीजिये, शायद आपकी आत्मा को शांति मिले।"

जमींदार ने बड़े प्रयत्न के साथ एक बार आंखें खोलीं। उस तीव्र-तर पीड़ा को दांत भींचे सहन करते हुए कंपित कंठ से बोले, "क्या आप यह समाचार अबतक गुप्त ही रख सकीं ?"

फिर "उफ !" कहते पीड़ा का अनुभव करते हुए सीने पर हाथ रखा।

"राम !" जमींदार ने पुकारा।

"राम ने उनकी ओर देखा।

"शांतम्मा तुम्हारी जन्मदात्री मां है। तुम मेरे दत्तपुत्र हो।" ये शब्द कोमल स्वर में निकले। फिर दांत भींचते चिल्ला पड़े, "रवि !" जमींदार ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

पिता से लिपटा राम उठा और "मां !" कहते हुए शांतम्मा की बांहों में एक बच्चे की भांति झुक गया।

शांतम्मा ने तृप्ति के साथ उसके सिर का स्पर्श करते हुए कहा, "राम !"

थानेदार को सामने खड़े देखकर रवि ने हथकड़ियां डलवाने के लिए हाथ बढ़ाये।

राम चिल्ला उठा, "रवि !"

बड़े प्रेम के साथ राम ने रवि को अपनी भुजाओं में कस लिया, कहा, "तुमने अक्षम्य अपराध किया है। इसका कारण परिस्थितियां हैं, क्योंकि हमें एक-दूसरे को समझने का मौका ही नहीं मिला। जब मैं तुमको निकट लाना चाहता था, तुम मुझसे दूर होते गये। लेकिन..." ये शब्द कहते हुए राम का कंठ अवरुद्ध हो उठा।

राम के हाथ को धीमे-से दबाते हुए रवि बोला, "भैया, मुझे अपनी चिंता कभी नहीं है। परिस्थितियों के विषम चक्र की चपेट में आ गया। अब भी मुझे विश्वास नहीं होता कि मैंने कोई अपराध किया है। अपराध किसका है, यह तो भविष्य ही बतावेगा।"

फिर लक्ष्मी को देखकर रवि ने कहा, "भया, जेल जाने के पहले मैं तुमसे एक याचना करना चाहता हूं !"

राम न रवि की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा।

"मैं चाहता हूं कि लक्ष्मी मेरी भाभी बने। मां का ख्याल रखना। बस...!" सबको एक बार देख रवि सिर झुकाये आगे बढ़ गया।

वीर की भांति निर्भयता के साथ जाते रवि को देखकर शांतम्मा व्यथापूर्ण स्वर में "रवि" चिल्लाकर बेहोश हो गई।

× × ×

रवि की इच्छानुसार लक्ष्मी राम की अर्धांगिनी बनी, किन्तु भूदेवी-जैसी शांतम्मा की वाणी जाती रही। गोली लगने के बाद शायद ऐसा हुआ था।

राम ने अपनी मां की वाणी सुननी चाही। बड़े-बड़े डाक्टर और वैद्यों को बुलवाकर चिकित्सा कराई। खूब खर्च किया, पर कोई फायदा न हुआ।

आखिर एक अनुभवी वैद्य ने राम से कहा, "छोटे पुत्र के जाने के साथ इनकी वाणी गई है। उसके आने के साथ ही इनकी वाणी भी लौट आनी चाहिए। दोनों सहोदर भाई जब साथ-साथ प्रेम से मुस्कराते हुए मां की ओर देखेंगे, तभी उनकी अमृतमय वाणी सुन सकेंगे।"

हमारा

उपन्यास-साहित्य

मन के बन्धन
दे.. भी
नवीन यात्रा
मास्टर महिम
ज्वालामुखी
मोगरा फूल
जिन्दगी दाव पर
भाग्य की विडम्बना
स्वाभिमानी
प्रेम-प्रपंच
रेखा
अनोखा
हृदयनाथ
प्रेम और प्रकाश
प्रकाश की छाया में
जागे तभी सवेरा
पद्मिनी का शाप
नियति के पुतले